भूमिका

साहित्य में नाटक

काव्य के भेद—संस्कृत के आचार्यों ने अपने शास्त्र में साहित्य के लिये 'काव्य' शब्द का प्रयोग किया है । आजकल हम 'काव्य' से मात्र वही अर्थ ग्रहण करते हैं जो अँगरेजी के 'पोइट्री' शब्द से प्रकट होता है। संस्कृत में काव्य का अर्थ विशद था। उसमें गद्य-पद्य-नाटक सभी आ जाते थे। इस काव्य के दो भेद थे, एक दृश्य-काव्य दूसरा श्रव्य-काव्य। जो काव्य पढ़ा-सुना जाता था वह श्रव्य था। 'वाल्मीकि की रामायण' श्रव्यकाव्य है। किन्तु वह काव्य जो देखा भी जा सके वह दृश्य-काव्य है। आज जिसे हम नाटक कहते हैं वह संस्कृत के आचार्यों की दृष्टि से दृश्य-काव्य था। नाटक का अभिनय तो दृश्य ही होता है, उसके सम्वाद, गीत तथा छन्द श्रव्य होते हैं। फलतः दृश्य-काव्य का स्थान ऊँचा माना जाता है, उसमें श्रव्य के गुण भी रहते हैं, दृश्य होने की उसमे विशेषता होती है।

दृश्य काव्य के भेद—दृश्य-काव्य के दो भेद माने गये हैं। १ रूपक, २ उपरूपक। रूपक और उपरूपक के कितने ही भेद किये गये है। हमे उन भेद-प्रभेदों को समझने की यहाँ विशेष आवश्यकता नहीं। रूपक के दस भेदो में से एक प्रमुख

भेद 'नाटक' का है। प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अंक और ईहामृग आदि अन्य नौ भेदों में से प्रकरण और प्रहसन भी कुछ महत्व रखते हैं, इन भेदों को भी विशेष रूप से लेखकों ने अपनाया है, पर नाटक की समानता ये भी नहीं कर सके।

नाटक के गुण—नाटक की कथा विख्यात होनी चाहिये। इतिहास अथवा पुराण से उसका वृत्त लिया जाना चाहिये। इसमें विविध रसों का समावेश होता है। पर शृङ्गार और वीर रस इसे विशेष प्रिय हैं। पाँच से दस तक अंक होते हैं। नायक कोई प्रतापी पुरुष होना चाहिए, जो धीरोदात्त हो, और राजवंश का हो।

मुद्राराक्षस का प्रकार—शास्त्र की दृष्टि से 'मुद्राराक्षस' 'नाटक' है। उसका इतिवृत्त ऐतिहासिक है। नायक राजवंश का है। सात अंक हैं। प्रधान रस 'वीर' रस है।

नाटक के अङ्ग—हमें यहाँ यह भी देख लेना है कि नाटक के अंग क्या हैं? उनका मुद्राराक्षस में क्या रूप है? नाटक के मुख्य तीन अंग हैं: १ वस्तु, २ नायक, और ३ रस,

वस्तु—वस्तु दो प्रकार की होती हैं, पहली आधिकारिक दूसरी प्रासंगिक। आधिकारिक वस्तु ही नाटक की प्रधान वस्तु है। यह वस्तु आदि से अन्त तक चलती है। इसी का बीजवपन होता है इसी का फलागम। 'मुद्राराक्षस' में हम चाणक्य को यह कहते सुनते हैं। "अथवा जब तक राक्षस नहीं पकड़ा जाता तब तक नंदों के मारने से क्या और चन्द्रगुप्त को राज्य मिलने से ही क्या?·······वाह राक्षस मन्त्री वाह! क्यों न हो! वाह मन्त्रियों में बृहस्पति के समान वाह! तू धन्य है क्योंकि—

जबलौं रहै सुख राज कौ तबलौं सबै सेवा करैं।
पुनि राज बिगड़े कौन स्वामी तनिक नहिं चित में धरैं॥
जे विपति हू में पालि पूरब प्रीति काज सँवारहीं।
ते धन्य नर तुम सारिखे दुरलभ अहैं संसय नहीं॥

इसी से तो हम लोग इतना यत्न करके तुम्हें मिलाना चाहते हैं कि तुम अनुग्रह करके चन्द्रगुप्त के मन्त्री बनो।"— ये शब्द हैं जो प्रथम अंक में आधिकारिक वस्तु का बीज वपन करते हैं। जब राक्षस मंत्रित्व स्वीकार कर लेता है, नाटक समाप्त हो जाता है। अतः चाणक्य और चन्द्रगुप्त की वह कथा जो राक्षस को वश करने के उद्योग से युक्त है आधिकारिक वस्तु है। प्रासंगिक वस्तु गौण होती है और आधिकारिक वस्तु की सहायता के लिए आती है। यह आधिकारिक वस्तु के कुछ आगे बढ़ जाने पर खड़ी होती है और आधिकारिक वस्तु में फलागम से पूर्व ही विसर्जित हो जाती है। इस दृष्टि से मुद्राराक्षस में 'मलयकेतु' सम्बन्धी वस्तु प्रासंगिक है। प्रासंगिक वस्तु का नायकमलयकेतु है। उसकी कथ राक्षस और चाणक्य की आधिकारिक कथा की सहायक है।

मुद्राराक्षस की कथा-वस्तु—चन्द्रगुप्त सिंहासनासीन हो चुका है। राक्षस ने चन्द्रगुप्त को मारने के लिए विषकन्या भेजी थी, उसके प्रयोग से चाणक्य पर्वतक को मार चुका है। अब चन्द्रगुप्त का राज्य एक संकट से मुक्त हो चुका है। पर पर्वतक का पुत्र मलयकेतु भाग कर राक्षस से मिला है। राक्षस ने अन्य कई राजाओं को सहायता के लिए तय्यार कर लिया है। चाणक्य ने भी प्रबन्ध कर रखा है। उसने मलयकेतु के साथ भागुरायण को भेज दिया है। भागुरायण मलयकेतु का विश्वासपात्र बन गया है। चाणक्य के सिखाये भद्रभट आदि

चन्द्रगुप्त के बड़े-बड़े अधिकारी भी राजद्रोह दिखाकर मलयकेतु के साथ हो लिये हैं। अब चाणक्य को यह चिन्ता है कि किसी प्रकार राक्षस हाथ में आये। चाणक्य इसी चिन्ता में है कि उसका दूत निपुणक उसे राक्षस की अँगूठी देता है। वह चन्दनदास जौहरी के घर मिली है। चन्दनदास के घर पर राक्षस अपना कुटुम्ब छोड़ गया था। राक्षस की मुद्रा पाकर चाणक्य अत्यन्त प्रसन्न हुआ। दूत ने तीन व्यक्तियों को चन्द्रगुप्त का विरोधी बताया था। एक तो जीवसिद्ध क्षपणक था। यह चाणक्य का ही गुप्तचर था, राक्षस को छलने के लिए राजद्रोह में जीवसिद्ध को देश निकाला दिला दिया। दूसरा था शकटदास कायस्थ। चाणक्य ने इसके पीछे सिद्धार्थक को लगा दिया था। सिद्धार्थक के द्वारा शकटदास के हाथ से बे सिरनामे का एक विशेषार्थी पत्र लिखवा कर उस पर राक्षस की मुहर लगाकर वह मुहर की अँगूठी और पत्र सिद्धार्थक को दे दी, और शकटदास को शूली देने की आज्ञा सुना दी। सिद्धार्थक शकटदास को शूली से छुड़ाकर भाग गया। शकटदास का इस कारण और भी विश्वास पात्र बन गया। ये दोनों भी राक्षस के यहाँ पहुँचे। तीसरा चन्द्रगुप्त विरोधी चन्दनदास जौहरी था उसे राक्षस का कुटुम्ब छिपाने और चन्द्रगुप्त को उस कुटुम्ब को न देने के अपराध में बन्दी कर लिया।

शकटदास भाग कर राक्षस के पास पहुंचा। मित्र से मिल कर राक्षस अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने सिद्धार्थक को अपने आभूषण पुरस्कार में दिये। वे आभूषण राक्षस वाली मुद्रा से मुद्रित कराके राक्षस के पास ही सिद्धार्थक ने रखवा दिये। स्वयं भी राक्षस की सेवा में रहने लगा। राक्षस ने वह मुद्रा सिद्धार्थक से लेकर शकटदास को दी और अपना सारा कार्य उसी से करने की आज्ञा दी। उधर पर्वतक के आभूषण

चन्द्रगुप्त ने ब्राह्मणों को दान में दिये। वे आभूषण राक्षस के पास बिकने आये और उसने खरीद लिये। कुसुमपुर में चन्द्रगुप्त ने चाणक्य से बनावटी कलह करली और मंत्री का अधिकार चाणक्य से छीन लिया। इस समाचार से राक्षस को प्रसन्नता हुई, मलयकेतु राक्षस से मिलने गया था, उसने राक्षस की प्रसन्नता देखी। भागुरायण ने बताया कि राक्षस का चाणक्य से द्वेष है, चन्द्रगुप्त से नहीं। एक बीज संदेह का मलयकेतु के मन में बैठ गया। मलयकेतु ने राक्षस को कुसुमपुर पर चढ़ाई करने में विलम्ब न करने का आदेश दिया।

कुसुमपुर पर चढ़ाई होगयी। सेना-शिविर के बाहर कोई व्यक्ति बिना भागुरायण से आज्ञापत्र लिये नहीं जा सकता था। जीवसिद्ध इसी समय भागुरायण से आज्ञापत्र लेने पहुँचता है। वह भागुरायण को बताता है कि उसने राक्षस के कहने से बिषकन्या का प्रयोग पर्वतक पर किया। इसे मलयकेतु भी सुन लेता है। उसे राक्षस पर संदेह और भी बढ़ जाता है। भागु-रायण उस संदेह का कुछ निराकरण करने का प्रयत्न करता है तभी सिद्धार्थक वन्दी बनाकर लाया जाता है। उसके पास पत्र और पेटी निकलती है। मौखिक सिद्धार्थक बताता है कि राक्षस ने चन्द्रगुप्त के पास यह संदेश भिजवाया है कि उसके साथी राजा कौन कौन क्या क्या चाहते हैं। मलयकेतु भड़क उठता है। पेटी में अपने भेजे हुए आभूषणों को देख कर उसका क्रोध और तीव्र होता है। वह राक्षस को बुलाता है। व्यूह रचना का प्रबंध उससे पूछता है। राक्षस उन राजाओं के नाम बताता है जो मलयकेतु के चारों ओर रहेंगे। अब मलयकेतु को निश्चय हो जाता है कि राक्षस ने इन राजाओं को मेरे चारों ओर मेरे विनाश के लिए ही लगा दिया है। वह उन राजाओं को मार डालने का आदेश भेज देता है। राक्षस को पृथक कर देता है।

इस अवसर का लाभ उठाकर भद्रभटादि चाणक्य के संकेत से मलयकेतु के दिखावटी मित्र मलयकेतु को बन्दी बना लेते हैं। चन्दनदास से मिलने कुसुमपुर की ओर दुखी हृदय से चलता राक्षस है। मार्ग में एक पुरुष आत्मघात के लिए सन्नद्ध मिलता है वह इसलिए मरना चाहता है कि जिष्णुदास उसका मित्र अग्निप्रवेश कर रहा है। जिष्णुदास इसलिए अग्निप्रवेश कर रहा है कि चन्दनदास शूली पर चढ़ाया जायगा। चन्दनदास जिष्णुदास का अभिन्न मित्र है। अब राक्षस के लिए केवल एक मार्ग है कि वह चन्दनदास को छुड़ाये। तलवार के प्रयोग से वह चन्दनदास को छुड़ा नहीं सकता क्यों कि उस पुरुष से सूचना मिलती है कि जब से शकटदास छुड़ाया गया है वधिक यदि किसी को तलवार लिये आते देखते हैं तो वध्य का तुरन्त वध कर देते हैं। अतः राक्षस बिना तलवार निकाले ही श्मशान में पहुँचता है और अपना समर्पण कर देता है। चाणक्य की नीति के आग्रह से राक्षस को चन्द्रगुप्त का मंत्रित्व स्वीकार करना पड़ता है मलयकेतु मुक्त कर दिया जाता है। नाटक समाप्त हो जाता है।

कथा-वस्तु का निर्वाह—नाटक में कथा-वस्तु का बहुत सुन्दर निर्वाह हुआ है। आधिकारिक और प्रासांगिक वस्तुऐं कुशलता पूर्वक गूँथी गयी हैं। नाटक में स्त्री पात्रों का नितान्त अभाव है। शृंगार रस किंचित भी नहीं। वीररस ही प्रधान है। नाटक की वस्तु ऐसे क्रम से अग्रसर है कि उत्कण्ठा बढ़ती जाती है और नाटक कहीं भी अरुचिकर अथवा शिथिल नहीं हो पाता।

नाटक के निर्माण के लिए जो पंच संधियाँ, पाँच कार्य-वस्थायें; पाँच अर्थप्रकृतियां नाट्यशास्त्रों में निर्धारित की गयी है, उनका भी उपयोग अच्छी प्रकार हुआ है।

कार्यअवस्थायें ये हैं—

१ प्रारम्भ—प्रारम्भ में मूलकथा का सूत्रपात होता है और किसी फल की कामना की जाती है। प्रथम अंक में चाणक्य ने राक्षस को वश में करने और चन्द्रगुप्त का मंत्री बनाने की जो इच्छा प्रकट की है वह फल की कामना है। उसी के लिए नाटक अग्रसर होता है। इसी अंक में हमें इस आरंभ से पूर्व के वृत्त का भी पता चल जाता है।

२ यत्न—फल को प्राप्त करने की चेष्टा को यत्न कहा जाता है। राक्षस और मलयकेतु का चाणक्य के विश्वास पात्र व्यक्तियों से घिर जाना और राक्षस तथा मलयकेतु का विश्वास प्राप्त कर लेना यत्न के अन्तर्गत है।

३ प्राप्त्याशा—विघ्न उठते हैं और उनका निराकरण होता जाता है; इसमे फल प्राप्ति की संभावना दिखाई पड़ती है। राक्षस के प्रयत्न विघ्न की भांति हैं। स्तनकलश कवि के गीत भी विघ्न हैं। चन्द्रगुप्त और चाणक्य की कलह भी इसी के अन्तर्गत हैं। राक्षस के प्रयोग निष्फल होते जाते हैं और राक्षस प्राप्ति की संभावना प्रतीत होने लगती है।

४ नियताप्ति—फल प्राप्ति अब संदिग्ध नहीं रह गयी। स्पष्ट ही फल सामने दीखता है। जीवसिद्ध और सिद्धार्थक के पकड़े जाने पर मलयकेतु का राक्षस का त्याग तथा मित्र राजाओं का मार डालना, मलयकेतु का पकड़ाजाना, ये सब नियताप्ति के अन्तर्गत हैं। फल के विरोध सब नष्ट हो चुके हैं। अब राक्षस कब चाणक्य के हाथ में पड़े बस यही देर है।

५ फलागम—फल की प्राप्ति। राक्षस का समर्पण और मंत्रित्व ग्रहण फल के पर्याय हैं। इनकी प्राप्ति हो जाती है। नाटक समाप्त हो जाता है।

अर्थ प्रकृतियाँ—अर्थ प्रकृतियाँ कथावस्तु के वे चमत्कारपूर्ण अङ्ग हैं जो कथावस्तु को कार्य की ओर ले जाती है। वे ये हैं—१ बीज—कार्य-आरम्भ का संकल्प, फल की इच्छा। यह कार्यावस्था के प्रारम्भ से मिलता है।

इस पर हम ऊपर विचार कर चुके हैं। २ विन्दु—जब कुछ अप्रासङ्गिक बातें अथवा असम्बद्ध बातें बीच में आजायँ और मुख्य प्रयोजन में विच्छेद प्रतीत होने लगे तब जो बात प्रधान कथा के सूत्र को अविच्छिन्न रखती है और कथा-समाप्ति तक जो उसे टूटने नहीं देती, उसे विन्दु कहते हैं। मुद्राराक्षस नाटक में मलयकेतु और राक्षस के वर्णनों से मूल अभिप्राय में विच्छिन्नता-सी आती है किन्तु राक्षस की मुद्रा से सम्बन्धित समस्त वृत्त उस विच्छिन्नता में भी अविच्छिन्नता बनाए रखती है। मुद्रा सम्बन्धी समस्त वृत्त ही विन्दु माना जाना चाहिए। ३ पताका—जो कथांश दूसरे के अभिप्राय को तो प्रत्यक्ष सिद्ध करता हो और अप्रत्यक्षतः मुख्य कथा को भी अग्रसर करने मे सहायक हो उसे पताका कहते हैं। मुद्राराक्षस में भागुरायण तथा भद्रभट आदि का वृत्त प्रत्यक्षतः तो मलयकेतु और राक्षस पक्ष का हित साधन करता है, पर यही वृत्त अधिकारिक वस्तु को प्रवाहित रखने में सहायक है, अतः पताका है। प्रकरी एक छोटा वृत्त होता है। इससे दूसरे के अर्थ की सिद्धि होती है, मुद्राराक्षस में चाणक्य और चन्द्रगुप्त का कलह राक्षस के अर्थ को सिद्ध करता है, प्रकरी है।

पंच सन्धियाँ— इन पाँचों अर्थ-प्रकृतियों और कार्यावस्थाओं के साथ पाँच सन्धियाँ होती हैं। मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श या विमर्श तथा निर्वहण। ये सन्धियाँ वास्तव में कार्यावस्थाओं के ही दूसरी दृष्टि से दिए गए नाम हैं। मुख

आरम्भ है। प्रतिमुख यत्न है। गर्भ प्राप्त्याशा है। अवमर्श नियताप्ति है। निर्वहण फलागम है। कार्यावस्था में वस्तु के व्यापारों पर दृष्टि रखी गयी है। सन्धियों मे नाटक-रचना और उसके साधन और शैली की दृष्टि है। संधियों का सम्बन्ध प्रधानतः नाटक के रूप से है वस्तु से नहीं।

इस चर्चा से यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि नाटककार ने बड़ी कुशलता से नाटकीय वस्तु को गूँथा है।

नाटक रचना के अन्य अंग—मूल नाटक के अतिरिक्त संस्कृत मे आरम्भ और अन्त मे कुछ और भी हुआ करता है। आरम्भ में हमें नान्दी मिलता है। नान्दी से अभिप्राय मंगलाचरण से है। मुद्राराक्षस में 'भरित नेह नवनीर……" यह नान्दी मङ्गलपाठ है। उसके उपरान्त प्रस्तावना है। प्रस्तावना में नाटककार का परिचय, उसके रचने का अभिप्राय तथा नाटकारम्भ की सूचना दी जाती है। सूचना देने के कई ढङ्ग प्रस्तावना में नाटककार अपनाता है। शास्त्रकारो ने ऐसे पॉच ढङ्गों का विशेष उल्लेख किया है। इनमे से मुद्राराक्षस में 'उद्‌घातक' शैली का उपयोग हुआ है। सूत्रधार नटी से चन्द्रहण न होने सम्बन्धी एक श्लोक पढ़ता है, उसका अर्थ चन्द्रगुप्त को ग्रसने का लगाकर चाणक्य के द्वारा नाटक आरम्भ करा दिया गया है। जहॉ अप्रतीतार्थक अर्थ से प्रतीतार्थक अर्थ निकाल कर उसमे और शब्द जोड़ कर कार्य आरम्भ होता है वहॉ 'उद्‌घातक' होता है।

मूल नाटक की समाप्ति में एक भरत वाक्य और रहता है। इसमें कोई कल्याण-कामना अथवा आशीर्वाद रहता है। यह नाटक की कथावस्तु से पृथक वस्तु होती है। राक्षस ने अन्त में जो यह कह कर कि "जो इतने पर भी सन्तोष न हो तो यह

आशीर्वाद सत्य हो जो श्लोक कहा है" "वाराहीमात्य''''आदि" वह भरत वाक्य है।

यहाँ तक वस्तु और उसके रूप-विकास पर विचार किया गया। अब नाटक के दूसरे अङ्ग 'नायक' को लिया जाना चाहिए।

पात्रों का चरित्र-चित्रण— इस नाटक के प्रधान पात्र चाणक्य, राक्षस, चन्द्रगुप्त और मलयकेतु हैं। चाणक्य और चन्द्रगुप्त एक पक्ष के हैं, राक्षस और मलयकेतु दूसरे पक्ष के। चन्द्रगुप्त नाटक का प्रधान नायक माना जा सकता है, यद्यपि नाटक में उसका प्रवेश केवल दो स्थानों पर हुआ है। एक तृतीय अङ्क मे गुरु से कलह करने के अभिनय के निमित्त। दूसरे अन्तिम अङ्क में राक्षस के मन्त्रित्व ग्रहण करने के अवसर पर। इन दोनो स्थलो पर चन्द्रगुप्त की जो झॉकी होती है वह अभिराम है। चन्द्रगुप्त धीरोदात्त है। स्वभाव से अत्यन्त विनम्र साथ ही तेजवान्। राक्षस ने चन्द्रगुप्त से प्रभावित होकर उसकी मन ही मन जो प्रशंसा की है, उससे चन्द्रगुप्त पंडित भी प्रतीत होता है। गुरु-भक्त तो था ही। गुरू से झूठे कलह का अभिनय करते समय भी मन मे आशंकित था कि कहीं गुरूजी वास्तव मे रुष्ट न हो जायॅ। मलयकेतु प्रतिनायक माना जा सकता है। वह असावधान विश्वासी और जल्दबाज है। गॉठ की बुद्धि का इसमे अभाव है, यद्यपि इस बात मे वह गर्व करता है कि वह अपने मन्त्री के वश में नहीं। फलतः वह भागुरायण के वश में है। भागुरायण उसे जैसी बुद्धि देता है, वैसा ही वह करता है। राक्षस पर परिस्थितियो वश जो आरोप हो रहे हैं उन्हें वह सहज ही स्वीकार कर अपने हितैषियों को मरवा डालता है। वह यह भूल जाता है कि कहीं कोई षडयन्त्र भी हो सकता है।

वह मनुष्य को परख नहीं पाता। यही कारण है कि वह अपने शत्रु पर विश्वास करता है और मित्र पर अविश्वास। लुक-छिप कर बात सुनने और भेद देखने के लिए वह उत्सुक तो नहीं रहता, पर बुरा भी नहीं समझता।

नाटक के प्रधान पात्र तो चाणक्य और राक्षस हैं। चाणक्य अत्यन्त मेधावी, दृढ़प्रतिज्ञ और कुटिल राजनीति का कुशल प्रयोक्ता है। उसने नन्दवंश को नाश करने का बीड़ा उठाया, उसे करके दिखा दिया। अब उसने राक्षस को मन्त्री बनाने का संकल्प किया है, उसे भी पूरा किया है। वह इतना दूरदर्शी है कि प्रत्येक घटना उसी के निश्चयानुसार घटती है। कारण इसका यह है कि समस्त कांड उसी का रचा हुआ है। मलयकेतु उसी के यंत्र में फँस कर भागा है। भागुरायण वहीं से उसके साथ है, और इतना उसके साथ है कि उसे स्वतन्त्र रूप से सोचने का अवसर तक नहीं देता। भद्रभटादि सभी भागकर उसके साथ हो गये है। उनसे उसे पूरा सहयोग मिला है। उन पर अविश्वास का कहीं अवसर नहीं आया। जब उन्होने विश्वासघात किया है, तब सब समाप्त हो चुका है; यह विश्वासघात बिल्कुल अंत मे हुआ है। ऐसे ही उसने राक्षस को घेर लिया है: जीवसिद्धि और सिद्धार्थक उसके अपने बन कर रहते हैं और चाणक्य का कार्य साधते है। इस सबसे चाणक्य की एक विशेषता यह प्रकट होती है कि वह मनुष्यों की परख जानता था और उन्हें वश में रखना जानता था। उसके साथ कोई भी विश्वासघात नहीं कर सका। उसके भेदिये बड़े पक्के थे। हर बात का भेद देते थे। वह किसी भी घटना का अपने हित मे उपयोग करने मे कुशल था। चन्द्रगुप्त के लिए भेजी गयी 'विषकन्या' का प्रयोग पर्वतक पर करा दिया। इससे 'चन्द्रगुप्त' का राज्य एक छत्र

हुआ, चन्द्रगुप्त की रक्षा हुई, मलयकेतु पर यह प्रकट किया कि चाणक्य ने तुम्हारे पिता के प्राण हर लिये है, अब तुम्हारी बारी है, उसे राजधानी से भगा दिया । इस घटना के द्वारा जनता को यह विश्वास दिलाया कि राक्षस ने पर्वतक को मरवा डाला, क्योंकि चन्द्रगुप्त और पर्वतक मित्र थे। इसी का लाभ उठाकर उसने चारो ओर कठोर रक्षा का प्रबन्ध कर दिया, जिससे राक्षस के बाद के प्रयत्न विफल हो गये। विषकन्या का प्रयोग करने के अपराध में जीवसिद्धि को राक्षस का मित्र और चन्द्रगुप्त का विरोधी घोषित कर देश-निकाला दे दिया, जिससे जीवसिद्धि राक्षस की मैत्री को और भी दृढ़ कर सका। इन गुणों के अतिरिक्त चाणक्य के चरित्र-गुण की सबसे प्रधान विशेषता यह प्रतीत होती है कि वह निस्वार्थी है । राजगुरु होते हुए भी वह कुटी में रहता है और भिक्षा का जो अन्न शिष्य लाते हैं वही लेता है। शत्रु के गुणों की प्रशंसा करने मे भी उदार है। अकारण रक्तपात उसने नहीं होने दिया। नीति बल से ही उसने शत्रु और उसके हृदय पर विजय प्राप्त की है।

राक्षस भी निस्पृह है। उसे स्वामी में अटल भक्ति है, उसके मरने के उपरान्त भी वह उसके वैर का प्रतिशोध लेने के लिये कटिबद्ध है। चाणक्य उसके इस गुण को जानता है, तभी वह उसे चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनाना चाहता है । पर राक्षस सहज विश्वासी है, और कुटिल नीति नहीं जानता। तभी चाणक्य के व्यक्तियों को अपना घनिष्ठ मित्र और विश्वासपात्र बना लेता है। जीवसिद्धि को वह केवल अन्त में ही जान सका कि वह उसका शत्रु था। जिस चीज से चाणक्य चौकन्ना हो जाता और दूसरे ढङ्ग से कार्य करता वह राक्षस के मन मे कोई उद्वेलन उत्पन्न नहीं करती। सिद्धार्थक के हाथ मे अपनी अँगूठी देखकर वह उसके कथन को सहज ही स्वीकार कर लेता है,

और उसी अँगूठी से शकटदास से अपने समस्त कार्य कराता है। राक्षस में असावधानी भी है। वह सिद्धार्थक को वे आभूषण पुरस्कार में दे देता है जो मलयकेतु ने उपहार में भेजे हैं। राक्षस प्रत्येक स्थिति को साधारण रूप में और सहन विश्वास से ग्रहण करता है, तभीं अन्त में उसके लिए जीवसिद्धि और सिद्धार्थक के व्यापार आश्चर्यकारक होते हैं। राक्षस हमे शस्त्र-वीर भी दीखता है।

वह कुसुमपुर की घेरे की बात सुनके उत्तेजित हो उठता है तो स्वयं पराक्रम से उस आक्रमण को रोकना चाहता है। चन्दनदास की रक्षा के लिए तलवार खींचकर श्मशान में जाना चाहता है। राक्षस भावों मे कृतज्ञ है और उदार है।

अन्य पात्रों में हमे चन्दनदास विशेष आकर्षित करता है। वह आदर्श मित्र है। अपने प्राणों की चिन्ता न करके राक्षस के कुटुम्ब की रक्षा करता है। वह हँसते हँसते शूली पर चढ़ने को तय्यार है।

रस—इस नाटक में वीर रस प्रधान है। कर्मवीरत्व के आदर्श उदाहरण इस नाटक में प्रस्तुत हुए हैं। चाणक्य और राक्षस किसी स्वार्थ से प्रेरित नहीं। उनमें शुद्ध कर्मवीरत्व की भावना है। उन्हें जो अपना कर्तव्य प्रतीत होता है, उसे उत्साह और आनन्द से कर रहे हैं। इस वीर रस का पोषण अद्भुत के द्वारा हुआ है।

दोष-परिहार— इस नाटक पर यह दोष लगाया जाता है कि इसके द्वारा कोई उत्तम शिक्षा नहीं मिलती। यह दोष निराधार है चाणक्य और राक्षस दोनो के चरित्र आदर्श हैं। निस्वार्थ कर्म भावना का जो उपदेश इस नाटक से मिलता है,

वह अन्यन्य कहाँ हैं ? यों च णक्य ने भले ही निजी कारण से नन्द वंश का नाश किया हो पर सत्य यह है कि नन्द वंश के अन्याय से समाज पीड़ित था। पर इस नाटक में तो उस चरित्र की ओर केवल चाणक्य की दृढ निश्चय-शीलता का ज्ञान कराने के लिए संकेत हुआ है। इस नाटक मे तो चन्द्रगुप्त के राज्य को दृढ और अखंड बनाने में ही हम उसे तल्लीन पाते हैं। उसका इसमें किंचित भी निजी स्वार्थ नहीं। वह राज्य से कोई वृत्ति भो नहीं लेता। एक साधारण कुटी में रहता है और शिष्यों द्वारा लाये अन्न पर निर्वाह करता है। राक्षस भी ऐसा ही निस्पृह है। साथ ही स्वामिभक्ति में आदर्श है। राज-गुरुओं और मन्त्रियो के ये अनुकरणीय आदर्श किस युग में शिक्षा देने में असमर्थ रहेंगे ? फिर नाटक का फल एक और महान शिक्षा देता है, गुणज्ञ शत्रु को जीत कर अपना बनाओ। इसी कारण तो यह नाटक 'परिणति' का नाटक है, 'ध्वंश' का नहीं। चाणक्य ने नीति से वह कार्य सिद्ध किया है, जो तलवारों से भी असंभव था। परिस्थितियों का चक्र हृदय का परिवर्तन कर देता है यह मर्म की बात इस नाटक मे ध्वनित है। राक्षस अपने वैर को छोड़ कर चन्द्रगुप्त का मन्त्री बन गया। छल आदि का उपयोग इस नाटक में हुआ है, इससे केवल यही सिद्ध होता है कि नाटककार राजनीति में छल को क्षम्य मानता है। और वह छल एक सदुद्देश्य को प्रयुक्त हुआ है तो अपना दोष खो बैठा है।

एक आपत्ति यह की जाती है कि नाटक में जीवसिद्ध तो राज हंता है, उसने पर्वतक पर विषकन्या का प्रयोग किया, पर्वतक चन्द्रगुप्त का मित्र था। उधर शकटदास और चन्दन-दास राजद्रोही मात्र थे। फिर शकटदास और चन्दनदास को तो क्यों शूली का दण्ड दिया गया और क्यों जीवसिद्धि को

निर्वासन का। यह अन्तर इसलिए नहीं हुआ कि जीवसिद्ध साधु था, वरन् यथार्थ में अपराध की गरिमा में स्पष्ट अन्तर होने के कारण हुआ। दूत से जब यह पूछा गया कि "तूने कैसे जाना कि क्षपणक मेरे शत्रुओं का पक्षपाती है।" तो दूत ने उत्तर दिया कि "उसने राक्षस मन्त्री के कहने से देव पर्वतेश्वर पर विषकन्या का प्रयोग किया।" इसमें अपराधी की दो स्थितियाँ हैं—एक, वह राक्षस का एजेंट है, स्वयं वह अपने कृत्य का उत्तरदाता नहीं। दूसरे उसका कार्य समाप्त हो चुका है अब उसको कोई शिकायत नहीं, उसका कार्य अनवरत नहीं चल रहा। उधर शकटदास और चन्दनदास की शत्रुता निरन्तर है। इसी कारण जीवसिद्ध का अपराध कम हुआ और शकटदास और चन्दनदास का अधिक।

हाँ; नाटक में एक असावधानी तो यह है कि चाणक्य से एक स्थान पर तो यह कहलाया है कि मेरी बँधी हुई शिखा को खुलवाना चाहते हो, और बाद मे फिर यह भी कहलाया गया है कि अब प्रतिज्ञा पूर्ण हुई मैं शिखा बाँधता हूँ। यहाँ परस्पर विरोध है। दूसरे पर्वतेश्वर की मृत्यु के पश्चात् मलयकेतु का 'कुमार' सम्बोधन भी उचित नहीं प्रतीत होता। इसका परिहार सम्भवतः यह हो सकता है कि पर्वतेश्वर की हत्या हुई उसके उपरान्त मलयकेतु का विधिवत् राज्याभिषेक नहीं हुआ।

—सत्येन्द्र, एम० ए०

मुद्रा-राक्षस नाटक

पूर्व कथा

पूर्व काल में भारतवर्ष में मगध राज्य एक भारी जनस्थान था। जरासन्ध आदि अनेक प्रसिद्ध पुरुवंशी राजा यहाँ बड़े प्रसिद्ध हुए हैं। इस देश की राजधानी पाटलिपुत्र अथवा पुष्पपुर थी। इन लोगों ने अपना प्रताप और शौर्य्य इतना बढ़ाया था कि आज तक इनका नाम भूमण्डल पर प्रसिद्ध है। किन्तु काल-चक्र बड़ा प्रबल है वह किसी को भी एक अवस्था में नहीं रहने देता। अन्त में* नंदवंश ने पौरवों को निकाल कर वहाँ अपनी जय पताका उड़ाई; वरंच सारे भारतवर्ष में अपना प्रबल प्रताप विस्तारित कर दिया।

इतिहास ग्रन्थों में लिखा है कि एक सौ अड़तीस वर्ष नन्दवंश ने मगध देश का राज्य किया। इसी वंश में महानन्द का जन्म हुआ। यह बड़ा प्रसिद्ध और अत्यन्त प्रतापशाली राजा हुआ। जब जगद्विजयी सिकन्दर (अलक्षेन्द्र) ने भारतवर्ष पर चढ़ाई की थी तब असंख्य हाथी, बीस हजार सवार और

---

* नन्दवंश सम्मिलित क्षत्रियों का वंश था। ये लोग शुद्ध क्षत्रिय नहीं थे।

दो लाख पैदल लेकर महानन्द ने उसके विरुद्ध प्रयाण किया था।* सिद्धान्त यह है कि भारतवर्ष में उस समय महानन्द सा प्रतापी और कोई राजा न था।

महानन्द के दो मंत्री थे। मुख्य का नाम शकटार और दूसरे का राक्षस था। शकटार शूद्र और राक्षस† ब्राह्मण था। ये दोनो अत्यन्त बुद्धिमान और महा प्रतिभा सम्पन्न थे। केवल भेद इतना था कि राक्षस धीर और गम्भीर था, उसके विरुद्ध शकटार अत्यन्त उद्धत स्वभाव था। यहाँ तक कि अपने प्राचीनपने के अभिमान से कभी कभी यह राजा पर भी अपना प्रभुत्व जमाना चाहता। महानन्द भी अत्यन्त उग्र स्वभाव, असहनशील और क्रोधी था, जिसका परिणाम यह हुआ कि महानन्द ने अन्त में शकटार को क्रोधान्ध होकर बड़े निविड़ बन्दीखाने में कैद किया और सपरिवार उसके भोजन को केवल दो सेर सत्तू देना निश्चित कर दिया‡।

---

*सिकन्दर के कान्यकुब्ज से आगे न बढ़ने के कारण महानन्द का उससे मुकाबिला नहीं हुआ।

†बृहत् कथा में राक्षस मंत्री का नाम कहीं नही है, केवल वररुचि और एक सच्चे राक्षस की कथा यों लिखी है—एक बड़ा प्रचण्ड राक्षस पाटलिपुत्र मे फिरा करता था। वह एक रात्रि वररुचि से मिला और पूछा कि "इस नगर में कौन स्त्री सुन्दर है ?" वररुचि ने उत्तर दिया—"जो जिसको रुचे वही सुन्दर है।" इस पर प्रसन्न हो कर राक्षस ने उससे मित्रता की और कहा कि हम सब बात में तुम्हारी सहायता करेंगे। और फिर सदा राजकाज में प्रत्यक्ष होकर राक्षस वररुचि की सहायता करता।

‡बृहत्कथा में यह कहानी और ही चाल पर लिखी है। वररुचि व्याडि और इन्द्रदत्त तीनो को गुरु दक्षिणा देने के हेत करोड़ों रुपये के

शकटार ने बहुत दिन तक महामात्य का अधिकार भोगा था इससे यह अनादर उसके पक्ष में अत्यन्त दुखदायी हुआ। नित्य सत्तू का बरतन हाथ में लेकर अपने परिवार से कहता कि जो एक भी नन्दवंश को जड़ से नाश करने में समर्थ हो वह यह सत्तू खाय। मन्त्री के वाक्य से दुःखित होकर उसके परिवार का कोई भी सत्तू न खाता अन्त में कारागार की पीड़ा से एक एक करके उसके परिवार के सब लोग मर गये।

एक तो अपमान का दुःख, दूसरे कुटुम्ब का नाश, इन दोनों कारणों से शकटार अत्यन्त तनछीन मन-मलीन, दीन-हीन हो गया। किन्तु अपने मनसूबे का ऐसा पक्का था कि शत्रु से बदला

सोने की आवश्यकता हुई। तब इन लोगों ने सलाह की कि नन्द (सत्यनन्द) राजा के पास चल कर उससे सोना लें। उन दिनों राजा का डेरा अयोध्या में था। ये तीनों ब्राह्मण वहाँ गये, किन्तु संयोग से इन्हीं दिनों राजा मर गया। तब आपस में सलाह करके इन्द्रदत्त योगबल से अपना शरीर छोड़ कर राजा के शरीर में चला गया, जिससे राजा फिर जी उठा। तभी से उसका नाम योगानन्द हुआ। योगानन्द ने वररुचि को करोड़ रुपये देने की आज्ञा की। शकटार बड़ा बुद्धिमान था, उसने सोचा कि राजा का मरकर जीना और एक अपरिचित वैरागी को करोड़ रुपया देना! इसमें हो न हो कोई भेद है। ऐसा न हो कि अपना काम करके फिर राजा का शरीर छोड़कर यह चला जाय। यह सोच कर शकटार ने राज्य भर में जितने मुरदे मिले उनको जलवा दिया, इसी में इन्द्रदत्त का भी शरीर जल गया। जब व्याड़ि ने यह वृत्तान्त योगानन्द से कहा तो यह सुन कर पहिले तो दुःखी हुआ फिर वररुचि को अपना मंत्री बनाया। परन्तु अन्त में शकटार की उग्रता से सन्तप्त होकर उसको अन्धे कुए में कैद किया। बृहत्कथा में शकटार के स्थान पर शकटाल नाम लिखा है।

लेने की इच्छा से अपने प्राण नहीं त्याग किए और थोड़े बहुत भोजन इत्यादि से शरीर को जीवित रक्खा। रात दिन इसी सोच मे रहता कि किस उपाय से वह अपना बदला ले सकेगा।

कहते हैं कि राजा महानन्द एक दिन हाथ मुँह धोकर हँसते २ जनाने मे आरहे थे। विचक्षणा नाम की एक दासी जो राजा के मुँह लगने के कारण कुछ धृष्ट हो गई थी, राजा को हँसता देख कर हँस पड़ी। राजा उसकी ढिठाई से बहुत चिढ़े और उससे पूछा—"तू क्यों हँसी"? उसने उत्तर दिया—"जिस बात पर महाराज हँसे उसी पर मैं भी हँसी।" महानन्द इस बात पर और भी चिढ़ा और कहा "अभी बतला, मैं क्यों हँसा, नहीं तो तुझको प्राणदण्ड होगा।" दासी से और कुछ उपाय न बन पड़ा और उसने घबड़ा कर इसके उत्तर देने को एक महीने की मुहलत चाही। राजा ने कहा—"आज से ठीक एक महीने के भीतर जो उत्तर न देगी तो कभी तेरे प्राण न बचेंगे।"

विचक्षणा के प्राण उस समय तो बच गये, परन्तु महीने के जितने दिन बीतते थे मारे चिन्ता के वह मरी जाती थी। कुछ सोच विचार कर वह एक दिन कुछ खाने-पीने की सामग्री लेकर शकटार के पास गई और रो रो कर अपनी सब विपत्ति कहने लगी। मन्त्री ने कुछ देर तक सोच कर उस अवसर की सब घटना पूछी और हँस कर कहा—"मैं जान गया राजा क्यों हँसे थे। कुल्ला करने के समय पानी के छोटे छींटों पर राजा को बट-बीज की याद आई, और यह भी ध्यान हुआ कि ऐसे बड़े बड़ के वृक्ष इन्हीं छोटे बीजो के अन्तर्गत हैं। किन्तु भूमि पर पड़ते ही वह जल के छींटे नष्ट होगये। राजा अपनी इसी भावना को याद करके हँसते थे।" विचक्षणा ने हाथ जोड़ कर कहा—"यदि आपके अनुमान से मेरे प्राण की रक्षा होगी तो मैं जिस तरह से

होगा, आपको मैं दखाने से छुड़ाऊंगी और जन्म भर आपकी दासी होकर रहूँगी।"

राजा ने विचक्षणा से एक दिन फिर हँसने का कारण पूछा, तो विचक्षणा ने शकटार से जैसा सुना था कह सुनाया। राजा ने चमत्कृत होकर पूछा—"सच बता, तुझसे यह भेद किसने कहा?" दासी ने शकटार का सब वृत्त कहा और राजा को शकटार की बुद्धि की प्रशंसा करते देख अवसर पाकर उसके मुक्त होने की प्रार्थना भी की। राजा ने शकटार को बन्दी से छुड़ा कर राक्षस के नीचे मन्त्री बना कर रक्खा।

ऐसे अवसर पर राजा लोग बहुत चूक जाते हैं। पहिले तो किसी की अत्यन्त प्रतिष्ठा बढ़ानी ही नीति विरुद्ध है। यदि संयोग से बढ़ जाय तो उसकी बहुत सी बातों को तरह देकर टालना चाहिये, और जो कदाचित् बड़े प्रतिष्ठित मनुष्य का राजा अनादर करे तो उसकी जड़ काट कर छोड़े, फिर उसका कभी विश्वास न करे। प्रायः अमीर लोग पहिले तो मुसाहिब या कारिन्दों को बेहतर सिर चढ़ाते हैं, और फिर छोटी-छोटी बातों पर उनको प्रतिष्ठाहीन कर देते हैं। इसीसे ऐसे लोग राजाओं के प्राण के ग्राहक हो जाते हैं और अन्त में नन्द की भाँति उनका सर्वनाश होता है।

शकटार यद्यपि बन्दी खाने से छूटा और छोटा मन्त्री भी हुआ, किन्तु अपनी अप्रतिष्ठा और परिवार के नाश का शोक उस के चित्त में सदा पहिले ही सा जागता रहा। रात दिन वह यही सोचता कि किस उपाय से ऐसे अव्यवस्थित चित्त, उद्धत राजा का नाश करके अपना बदला लें। एक दिन वह घोड़े पर हवा खाने जाता था। नगर के बाहर एक स्थान पर देखता है कि एक काला सा ब्राह्मण अपनी कुटी के सामने मार्ग की कुशा उखाड़ उखाड़कर

उसकी जड़ में मठा डालता जाता है, पसीने से लथपथ है, परन्तु कुछ भी शरीर की ओर ध्यान नहीं देता। चारों ओर कुशा के बड़े २ ढेर लगे हुए हैं। शकटार ने आश्चर्य्य से ब्राह्मण से इस श्रम का कारण पूछा। उसने कहा—मेरा नाम विष्णुगुप्त चाणक्य है। मैं ब्रह्मचर्य में, नीति, वैद्यक, ज्योतिष, रसायन आदि संसार की उपयोगी सब विद्या पढ़कर विवाह की इच्छा से नगर की ओर आया था, किन्तु कुश गड़ जाने से मेरे मनोरथ में विघ्न हुआ, इससे जबतक इन बाधक कुशाओं का सर्वनाश न कर लूंगा और काम न करूँगा। मठा इस वास्ते इनकी जड़ में देता हूँ जिससे पृथ्वी के भीतर इनकी मूल भी भस्म हो जाय।"

शकटार के जी में यह बात आई कि ऐसा पक्का ब्राह्मण जो किसी प्रकार राजा से क्रुद्ध हो जाय तो उसका जड़ से नाश करके छोड़े। यह सोच कर उसने चाणक्य से कहा कि जो आप नगर में चलकर पाठशाला स्थापित करें तो अपने को मैं बड़ा अनुगृहीत समझूं। मैं इसके बदले बेलदार लगाकर यहाँ की सब कुशाओं को खुदवा डालूंगा। चाणक्य इसपर सहमत हुआ और नगर मे आकर एक पाठशाला स्थापित की। बहुत से विद्यार्थी पढ़ने आने लगे और पाठशाला बड़ी धूमधाम से चल निकली।

अब शकटार इस सोच में हुआ कि चाणक्य और राजा में किस चाल से बिगाड़ हो। एक दिन राजा के घर में श्राद्ध था, उस अवसर को शकटार अपने मनोरथ सिद्ध होने का अच्छा समय सोच कर चाणक्य को श्राद्ध का न्यौता देकर अपने साथ ले आया और श्राद्ध के आसन पर बिठला कर चला गया। क्योंकि वह जानता था कि चाणक्य का रङ्ग काला, आँखें लाल और दाँत काले होने के कारण नन्द उसको आसन पर से उठा देगा, जिससे चाणक्य अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसका सर्वनाश करेगा।

ठीक ऐसा ही हुआ—जब राक्षस के साथ नन्द श्राद्धशाला में आया एक और अनिमन्त्रित ब्राह्मण को आसन पर बैठा हुआ और श्राद्ध के अयोग्य देखा तो चिढ़ कर आज्ञा दी कि इसको बाल पकड़ कर यहाँ से निकाल दो। इस अपमान से ठोकर खाये हुये सर्प की भाँति अत्यन्त क्रोधित होकर शिखा खोल कर चाणक्य ने सबके सामने प्रतिज्ञा की कि जब तक इस दुष्ट राजा का सत्यानाश न कर लूँगा तब तक शिखा न बाँधूँगा। यह प्रतिज्ञा करके बड़े क्रोध से राजभवन से चला गया।

शकटार अवसर पाकर चाणक्य को मार्ग में से अपने घर ले आया और राजा की अनेक निन्दा करके उसका क्रोध और भी बढ़ाया और अपनी सब दुर्दशा कह कर नन्द के नाश में सहायता करने की प्रतिज्ञा की। चाणक्य ने कहा कि जब तक हम राजा के घर का भीतरी हाल न जानें कोई उपाय नहीं सोच सकते। शकटार ने इस विषय में विचक्षणा की सहायता देने का वृत्तान्त कहा और रात को एकान्त में बुलाकर चाणक्य के सामने उससे सब बात का करार ले लिया।

महानन्द के नौ पुत्र थे। आठ विवाहिता रानी से और एक चन्द्रगुप्त मुरा नाम की एक नाइन स्त्री से। इसी से चन्द्रगुप्त को मौर्य और वृषल भी कहते हैं। चन्द्रगुप्त बड़ा बुद्धिमान् था। इसी से और आठों भाई इससे भीतरी द्वेष रखते थे। चन्द्रगुप्त की बुद्धिमानी की बहुत सी कहानियाँ हैं। कहते हैं कि एक बेर रूम के बादशाह ने महानन्द के पास एक कृत्रिम सिंह लोहे की जाली के पिञ्जड़े में बन्द करके भेजा और कहला दिया कि पिञ्जड़ा टूटने न पावे और सिंह इसमें से निकल जाय। महानन्द और उसके आठ सौ पुत्रों ने इसको बहुत कुछ सोचा, परन्तु बुद्धि ने कुछ काम न किया। चन्द्रगुप्त ने विचारा

कि यह सिंह अवश्य किसी ऐसे पदार्थ का बना होगा जो या तो पानी से या आग से गल जाय, यह सोच कर पहिले उन्होंने उस पिञ्जड़े को पानी के कुण्डा में रक्खा और जब वह पानी से न गला तो उसपिञ्जड़े के चारों ओर आग जलवाई, जिसकी गर्मी से वह सिंह, जो लाह और राल का बना था, गल गया। एक बेर ऐसे ही किसी बादशाह ने एक अँगूठी में दहकती हुई आग*एक

---

*दहकती आग की कथा—"जरासन्धमहाकाव्य" में लिखा है कि जरासन्ध ने उग्रसेन के पास अंगीठी भेजी थी, शायद उसी से यह कथा निकाली गई हो, कौन जाने।

सवैया—रूप की रूपनिधान अनूप अँगीठी नई गढ़ि मोल मँगाई।
ता मधि पावकपुंज धर्‌यो गिरिधारन जामें प्रभा अधिकाई॥
तेज सों ताके लजाई भई रज में मिली आसु—सबै रजताई।
मानो प्रवाल को थाल बनाय कै लाल की रास बिसाल लगाई॥१॥
ढाँक के पावक दूत के हाथ दै बात कही इहि भाँति बुझाय कै।
भोज भुआल सभा मह सन्मुख राखि कै यों कहियो सिर नाय कै॥
याहि पठायो जरासुत नै अवलोकहु नीके अधीरज लाय कै।
पुत्र खपाय कै नातिन पाय कै जोहौ जै पाय के कौन उपाय कै॥२॥

दोहा—सुनत चार तिहि हाथ लै, गयो भैम दरबार।
बासव ऐसे बैक सब, जहँ बैठे सरदार॥३॥

अडिल्ल—जायजरासुतदूतभैमपतिपदपर्‌यौ। देखिजराऊजगहहियेसभ्रमभर्‌यो
जगतजरावनद्रव्यपातआगे धर्‌यौ। सोच जराह्न अभयहालवरननकर्‌यो॥४॥
सुनिबिहँसेजदुबीरजीतकीचायसों। हंसिबोले गोविंद कहहू यह रायसों।
उचितससुरपन कीन दनिकुलन्यायसों। चही दमाद सहाय सुताकी हायसों॥५॥

सोरठा—इम कहि दूत गहि चाप, आप आप सिखि में दियो।
तुरतहि गयो बुझात, ज्ञान पाय मन भ्रात जिमि॥६॥
बिदा कियो नृप दूत, उर में सर को अङ्क करि।
निरखि इहदरथ पूत, सभन सहित कोप्यो अतिहि॥७॥

थोरा सरसों और एक मीठा फल महानन्द के पास अपने दूत के द्वारा भेज दिया। राजा की सभा का कोई भी मनुष्य इसका आशय न समझ सका; किन्तु चन्द्रगुप्त ने सोच कर कहा कि अँगीठी यह दिखलाने को भेजी है कि मेरा क्रोध अग्नि है और सरसों यह सूचना कराती है कि मेरी सेना असंख्य है और फल भेजने का आशय है कि मेरी मित्रता का फल मधुर है। इसके उत्तर में चन्द्रगुप्त ने एक घड़ा जल और एक पिंजड़े में थोड़े से तीतर और एक अमूल्य रत्न भेजा, जिसका आशय यह था कि तुम्हारी सेना कितनी भी असंख्य क्यों न हो हमारे वीर उसको भक्षण करने में समर्थ हैं और तुम्हारा क्रोध हमारी नीति में सहज ही बुझाया जा सकता है और हमारी मित्रता सदा अमूल्य और एक रस है। ऐसे ही तीन पुतलियों वाली कहानी भी इसी के साथ प्रसिद्ध है। इसी बुद्धिमानी के कारण चन्द्रगुप्त से उसके भाई लोग बुरा मानते थे! और महानन्द भी अपने औरस पुत्रों का पक्ष करके इससे कुढ़ता था। यह यद्यपि शुद्रा के गर्भ से था, परन्तु ज्येष्ठ होने के कारण अपने को राज का भागी समझता था, और इसी से इसका राजपरिवार से पूर्ण वैमनस्य था। चाणक्य और शकटार ने इसीसे निश्चय किया कि हम लोग चन्द्रगुप्त को राज का लोभ देकर अपनी ओर मिला लें और नन्दों का नाश करके इसी को राजा बनावें।

यह सब सलाह पक्की हो जाने के पीछे चाणक्य तो अपनी पुरानी कुटी में चला गया और शकटार ने चन्द्रगुप्त और विचक्षणा को तब तक सिखा पढ़ा कर पक्का करके अपनी ओर फोड़ लिया। चाणक्य ने कुटी में जाकर हलाचल विष मिले हुए कुछ ऐसे पकवान तैयार किये जो परीक्षा करने में न पकड़े जायँ, किन्तु खाते ही प्राणनाश हो जाय। विचक्षणा ने किसी प्रकार से महानन्द को पुत्रों समेत वह पकवान खिला

दिया, जिससे बेचारे सब के सब एक साथ परमधाम को सिधारे*।

---

*भारतवर्ष की कथाओं में लिखा है कि चाणक्य ने अभिचार से मारण का प्रयोग कर के इन सबों को मार डाला। विचक्षणा ने बस अभिचार निर्माल्य को किसी प्रकार इन लोगो के अङ्ग में छुला दिया था। किंतु वर्तमान काल के विद्वान लोग सोचते हैं कि उस निर्माल्य में मन्त्र का बल नहीं था, चाणक्य ने कुछ औषधि ऐसे विषमिश्रित बनाये थे कि जिन के भोजन वा स्पर्श से मनुष्य का सद्यः नाश हो जाय। भट्ट सोमदेव के कथा सरित्सागर के पीठलम्ब के चौथे तरंग में लिखा है— "योगानन्द को ऊंची अवस्था में नये प्रकार की कामवासना उत्पन्न हुई। वररुचि ने यह सोचकर कि राजा को तो भोगविलास से छुट्टी ही नहीं है, इससे राज काज का काम शकटार से निकाला जाय तो अच्छी तरह से चले। यह विचार कर और राजा से पूछ कर शकटार को अन्धे कुए से निकाल कर वररुचिने मन्त्री पद पर नियत किया। एक दिन शिकार खेलने में गंगा में राजा ने अपनी पाचों उङ्गलियों की परछाईं वररुचि को दिखलाई। वररुचि ने अपनी दो उङ्गलियों की परछाईं ऊपर से दिखाई, जिससे राजा के हाथ की परछाईं छिप गई राजा ने इन संज्ञाओं का कारण पूछा। वररुचि ने कहा आप का यह आशय था कि पांच मनुष्य मिल कर सब कार्य साध सकते हैं। मैंने यह कहा कि जो दो चित्त एक हो जाँय तो पांच का बल व्यर्थ है। इस बात पर राजा ने वररुचि की बड़ी स्तुति की। एक दिन राजा ने अपनी रानी को एक ब्राह्मण से खिड़की में से बात करते देख कर उस ब्राह्मण को मारने की आज्ञा दी, किन्तु अनेक कारणों से वह बच गया वररुचि ने कहा कि आपके सब महल की यही दशा है और अनेक स्त्री वेषधारी पुरुष महल में रहते हैं और उन सबों को पकड़ कर दिखला दिया। इसी से उस ब्राह्मण के प्राण बचे। एक दिन योगानन्द

चन्द्रगुप्त इस समय चाणक्य के साथ था। शकटार अपने दुःख और पापों से सन्तप्त होकर निबिड़ बन में चला गया और अनशन करके प्राण त्याग किये। कोई-कोई इतिहास लेखक कहते हैं कि चाणक्य ने अपने हाथ से शस्त्र द्वारा नन्द का वध किया और फिर क्रम से उसके पुत्रों को भी मारा, किन्तु

की रानी के एक चित्र में जो महल में लगा हुआ था, बररुचि ने जाँघ मे तिल बना दिया। योगानन्द को गुप्त स्थान में बररुचि के तिल बनाने से उस पर भी सन्देह हुआ और शकटार को आज्ञा दी कि तुम बररुचि को आज रात ही रात को मार डालो। शकटार ने उसको अपने घर में छिपा रक्खा और किसी और को उसके बदले मार कर उसका मारना प्रकट किया। एक बेर राजा का पुत्र हिरण्यगुप्त जङ्गल में शिकार खेलने गया था, वहाँ रात को सिंह के भय से एक पेड़ पर चढ़ गया। उस वृक्ष पर एक भालू था, किन्तु उसने इसको अभय दिया। इन दोनों में यह बात ठहरी कि आधी रात तक कुँवर सोवे भालू पहरा दे, फिर भालू सोवे कुंवर पहरा दें। भालू ने अपना मित्र-धर्म निबाहा और सिंह के बहकाने पर भी कुंवर की रक्षा की। किन्तु अपनी पारी में कुंवर ने सिंह के बहकाने से भालू को ढकेलना चाहा, जिस पर उसने जागकर मित्रता के कारण कुँवर को मारा तो नहीं किन्तु कान में मूत दिया, जिससे कुँवर गूंगा और बहिरा हो गया। राजा को बेटे की इस दुर्दशा पर बड़ा सोच हुआ और कहा कि बररुचि जीता होता तो इस समय उपाय सोचता। शकटार ने यह अवसर समझ कर राजा से कहा कि बररुचि जीता है और लाकर राजा के सामने खड़ा कर दिया। बररुचि ने कहा—कुंवर ने मित्र द्रोह किया उसका फल है। यह वृत्त कहकर उसको उपाय से अच्छा किया। राजा ने पूछा—तुमने यह वृतान्त किस तरह जाना? बररुचि ने कहा—योग बल से जैसे रानी का तिल। (ठीक यही कहानी राजाभोज, उसकी रानी भानु-

इस विषय का कोई दृढ़ प्रमाण नहीं है। चाहे जिस प्रकार से हो चाणक्य ने नन्दों का नाश किया। किन्तु केवल पुत्र सहित राजा के मारने ही से वह चन्द्रगुप्त को राज-सिंहासन पर न बैठा सका इससे अपने अन्तरङ्ग मित्र जीवसिद्धि को क्षपणक के में राक्षस के पास छोड़ कर आप राजा लोगों से सहायता लेने की इच्छा से विदेश निकला। अन्त में अफगानिस्तान वा उसके उत्तर ओर के निवासी पर्वतक नामक लोभ-परतन्त्र एक राजा से मिलकर और उसको जीतने के पीछे मगध राज्य का आधा भाग देने के नियम पर उसको पटने पर चढ़ा लाया। पर्वतक के भाई का नाम वैरोधक* और पुत्र का मलयकेतु था, और भी पाँच म्लेच्छ राजाओं को पर्वतक अपने सहाय को लाया था।

इधर राक्षस मन्त्री राजा के मरने से दुःखी होकर उसके भाई सर्वार्थ सिद्ध को सिंहासन पर बैठा कर राजकाज चलाने लगा। चाणक्य ने पर्वतक की सेना लेकर कुसुमपुर चारों ओर से घेर लिया। पन्द्रह दिन तक घोरतर युद्ध हुआ। राक्षस की सेना और नागरिक लोग लड़ते-लड़ते शिथिल हो गये; इसी समय में गुप्त रीति से जीवसिद्ध के बहकाने से राजा सर्वार्थसिद्ध बैरागी हो कर बन में चला गया, इस कुसमय में राजा के चले जाने से राक्षस और भी उदास हुआ। चन्दनदास

मती और उसके पुत्र और कालिदास की भी प्रसिद्ध है) यह सब कह कर और उदास होकर वररुचि जङ्गल मे चला गया। वररुचि से शकटार ने राजा के मारने को कहा था, किन्तु वह धर्मिष्ट था, इससे सहमत न हुआ। वररुचि के चले जाने पर शकटार ने अवसर पाकर चाणक्य द्वारा कृत्या से नन्द को मारा।

* लिखी पुस्तकों मे यह नाम विरोधक, वैरोधक, वैरोचक, वैवोधक विरोध, वैराध इत्यादि कई चाल से लिखा।

नामक एक बड़े धनी जौहरी के घर में अपने कुटुम्ब को छोड़ कर और शकटदास कायस्थ तथा अनेक राजनीति जानने वाले विश्वासपात्र मित्रों को और कई आवश्यक काम सौंप कर राजा सर्वार्थसिद्धि के फेर लाने के लिये आप तपोवन की ओर गया।

चाणक्य ने जीवसिद्धि द्वारा यह सब सुनकर राक्षस के पहुँचने के पहले ही अपने मनुष्यों से राजा सर्वार्थसिद्धि को मरवा डाला। राक्षस जब तपोवन में पहुँचा और सर्वार्थसिद्धि को मरा देखा तो अत्यन्त उदास हो कर वहीं रहने लगा। यद्यपि सर्वार्थ के मार डालने से चाणक्य की नन्दकुल के नाश की प्रतिज्ञा पूरी हो चुकी थी, किन्तु उसने सोचा कि जब तक राक्षस चन्द्रगुप्त का मन्त्री न होगा तब तक राज्य स्थिर न होगा। वरंच बड़े विनय से तपोवन में राक्षस के पास मन्त्रित्व स्वीकार करने का सन्देशा भेजा परन्तु प्रभुभक्त राक्षस ने उसको स्वीकार नहीं किया।

तपोवन में कई दिन रह कर राक्षस ने यह सोचा कि जब तक पर्वतक को हम न फोड़ेंगे काम न चलेगा। यह सोच कर वह पर्वतक के राज्य में गया और वहाँ उसके बूढ़े मन्त्री से कहा कि चाणक्य बड़ा दगाबाज है, वह आधा राज कभी न देगा, आप राजा को लिखिए, वह मुझसे मिले तो मैं सब राज्य उनको दूं। मन्त्री ने पत्र द्वारा पर्वतक को यह सब वृत्त और राक्षस की नीति कुशलता लिख भेजी और यह भी लिखा कि मैं अत्यन्त वृद्ध हूँ, आगे से मन्त्री का काम राक्षस को दीजिये। पाटलिपुत्र विजय होने पर भी चाणक्क आधा राज्य देने में विलम्ब करता है, यह देखकर सहज लोभी पर्वतक ने मन्त्री की बात मान ली और पत्र द्वारा राक्षस को गुप्त रीति

से अपना मुख्य अमात्य बनाकर इधर ऊपर के चित्त से चाणक्य से मिला रहा।

जीवसिद्धि के द्वारा चाणक्य ने राक्षस का सब हाल जान कर अत्यन्त सावधानता-पूर्वक चलना आरम्भ किया। अनेक भाषा जानने वाले बहुत से धूर्त पुरुषों को बेष बदल बदल कर भेद लेने के लिये चारों ओर नियुक्त किया। चन्द्रगुप्त को राक्षस का कोई गुप्तचर धोखे से किसी प्रकार की हानि न पहुँचावे इसका भी पक्का प्रबन्ध किया और पर्वतक की विश्वसघातकता का बदला लेने के दृढ़ संकल्प से, परन्तु अत्यन्त गुप्तरूप से, उपाय सोचने लगा।

राक्षस ने केवल पर्वतक की सहायता से राज के मिलने की आशा छोड़ कर कुलूत * मलय, काश्मीर, सिन्धु और पारस इन पाँच देशों के राजाओं से सहायता ली। जब इन पाँचों देश के राजाओं ने बड़े आदर से राक्षस को सहायता देना स्वीकार किया तो वह तपोवन के निकट फिर से लौट आया और वहाँ से चन्द्रगुप्त के मारने को एक विष कन्या* भेजी और अपना विश्वासपात्र समझ कर जीवसिद्धि को उसके साथ

---

*कुलूत देश किलात वा कुल्लू देश।

*विषकन्या शास्त्रों में दो प्रकार की लिखी है—एक तो थोड़े से ऐसे बुरे योग हैं कि उस लग्न मे उस प्रकार के ग्रहों के समय जो कन्या उत्पन्न हो उसके साथ जिसका विवाह हो वा जो उसका साथ करे वह साथ ही वा शीघ्र ही मर जाता है। दूसरे प्रकार की विषकन्या वैद्यक रीति से बनाई जाती थी। छोटे पन से वरन गर्भ से कन्या को दूध में वा भोजन मे थोड़ा थोड़ विष देते देते बड़ी होने पर उसका शरीर ऐसा विषमय हो जाता था कि जो उसका अङ्गसङ्ग करता, वह मर जाता।

कर दिया। चाणक्य ने जीवसिद्धि द्वारा यह सब बात जान कर और पर्वतक की धूर्तता और विश्वासघातकता से क्रुद्ध कर प्रगट में इस उपहार को बड़ी प्रसन्नता से ग्रहण किया और लाने वाले को बहुत-सा पुरुष्कार देकर विदा किया। साँझ होने के पीछे धूर्ताधिराज चाणक्य ने इस कन्या को पर्वतक के पास भेज दिया और इन्द्रियलोलुप पर्वतक उसी रात को उस कन्या के संग से मर गया। इधर चाणक्य ने यह सोचा कि मलयकेतु यहाँ रहेगा तो उसको राज्य का हिस्सा देना पड़ेगा, इससे किसी तरह इसको यहाँ से भगावें तो काम चले। इस कार्य्य के हेतु भागुरायण नामक एक प्रतिष्ठित विश्वासपात्र पुरुष को मलयकेतु के पास सिखा पढ़ा कर भेज दिया। उसने पिछली रात को मलयकेतु से जाकर उसका बड़ा हितैषी बन कर उससे कहा कि आज चाणक्य ने विश्वासघात करके आपके पिता को विष-कन्या के प्रयोग से मार डाला और औसर पाकर आपको भी मार डालेगा। मलयकेतु बेचारा इस बात के सुनते ही सन्न हो गया और पिता के शयनागार में जाकर देखा तो पर्वतक को बिछौने पर मरा हुआ पाया। इस भयानक-दृश्य के देखते ही मलयकेतु के प्राण सूख गये और भागुरायण की सलाह से उस रात को छिप कर वहाँ से भाग कर अपने राज्य की ओर चला गया। इधर चाणक्य के सिखाये भद्रभट इत्यादि चन्द्रगुप्त के कई बड़े बड़े अधिकारी प्रगट में राजद्रोही बन कर मलयकेतु और भागुरायण के साथ ही भाग गये।

राक्षस ने मलयकेतु से पर्वतक के मारे जाने का समाचार सुनकर अत्यन्त सोच किया और बड़े आग्रह और सावधानी से चन्द्रगुप्त और चाणक्य के अनिष्टसाधन में प्रवृत्त हुआ।

चाणक्य ने कुसुमपुर में दूसरे दिन यह प्रसिद्ध कर दिया

कि पर्वतक और चन्द्रगुप्त दोनों समान बन्धु थे, इससे राक्षस ने विषकन्या भेज कर पर्वतक को मार डाला और नगर के लोगों के चित्त पर, जिनको यह सब गुप्त अनुसन्धि न मालूम थी, इस बात का निश्चय भी करा दिया।

इसके पीछे चाणक्य और राक्षस मे परस्पर नीति की जो चोटें चली हैं उसी का इस नाटक में वर्णन है।

महाकवि विशाखदत्त का बनाया

मुद्रा-राक्षस नाटक

स्थान रङ्गभूमि

(रङ्गशाला में नान्दी मङ्गलपाठ करता है ।)

भरित नेह-नव-नीर नित, बरसत सुरस अथोर ।
जयति अपूरब घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर ॥१॥*

'कौन है सीसपै' 'चन्द्रकला' कहा याको है नाम यही त्रिपुरारी ।
'हाँ यही नाम है भूल गई किमि जानत हू तुम प्रान पियारी ॥'
'नारिहि पूछत चन्द्रहिं नाहिं कहै विजया जदि चन्द्र लबारी ।
यो गिरिजै छलि गंग छिपावत ईस हरौ सब पीर तुम्हारी ॥२॥

पाद प्रहार सों जाइ पताल न भूमि सबै तनु बोझ के मारे ।
हाथ नचाइबे सों नभ में इत के उत टूटि परैं नहिं तारे ॥
देखन सों जरि जाहि न लोक, न खोलत नैन कृपा उर धारे ।
यों थलके बिनु कष्ट सों नाचत शर्व हरो दुःख सर्व तुम्हारे ॥

---

* संस्कृत का मङ्गलाचरण:—

धन्या केयं स्थिता ते शिरसि शशिकला, किन्तु नामैतदस्याः
नामैवास्यास्तदेतत्; परिचितमपि ते विस्मृतं कस्य हेतोः ॥
नारीं पृच्छामि नेन्दुः कथयतु विजया न प्रमाणं यदीन्दु-
र्देव्या निह्नोतुमिच्छोरिति सुरसरितं शाठ्यमव्याद्विभोर्वः ॥१॥

नान्दी पाठ के अनन्तर*

सूत्रधार—बस! बहुत मत बढ़ाओ, सुनो, आज मुझे सभासदों की आज्ञा है कि सामन्त बटेश्वरदत्त के पौत्र और महाराज पृथु के पुत्र विशाखदत्त कवि का बनाया मुद्रा-राक्षस

और भी

पादस्याविर्भवन्तीमवनतिमवने—रक्षतः स्वैरपातैः
संस्कोचेनैव दोष्णां मुहुरभिनयतः सर्व्वलोकातिगानाम्।
दृष्टिं लक्ष्येषु नोग्रां ज्वलनकणमुचं बध्नतो दाहभीते—
रित्याधारानुरोधात् त्रिपुरविजयिनः पातु वो दुःखनृत्तम् ॥२॥

अर्थ।

'यह आपके सिर पर कौन बड़भागिनी है?' 'शशि कला है।' 'क्या इसका यही नाम है!' हाँ यही तो, तुम तो जानती हो फिर क्यों भूल गई'! 'अजी हम स्त्री को पूछती हैं, चन्द्रमा को नहीं पूछतीं, 'अच्छा चन्द्र की बात का विश्वास न हो तो अपनी सखी विजया से पूछ लो' यों ही बात बनाकर गंगाजी को छिपा कर देवी पार्वती को ठगने की इच्छा करने वाले महादेवजी का छल तुम लोगों की रक्षा करे।

दूसरा।

पृथ्वी झुकने के डर से इच्छानुसार पैर का बोझ नहीं दे सकते, ऊपर के लोकों के इधर उधर हो जाने के भय से हाथ भी यथेच्छ नहीं फेंक सकते, और उसके अग्निकण से जल जायंगे इसी ध्यान से किसी की ओर भर दृष्टि देख भी नही सकते; इससे आधार के संकोच से महादेव जी का कष्ट से नृत्य करना तुम्हारी रक्षा करे।

*नाटकों में पहले मंगलाचरण करके तब खेल आरम्भ करते हैं। इस मङ्गलाचरण को नाटकशास्त्र में नान्दी कहते हैं। किसी का मत है कि नान्दी पहले ब्राह्मण पढ़ता है, कोई कहता है सूत्रधार ही और किसी का मत है कि परदे के भीतर से नान्दी पढ़ी या गायी जाय।

नाटक खेलो। सच है, जो सभा काव्य के गुण और दोष को सब भाँति समझती है, उसके सामने खेलने में मेरा भी चित्त सन्तुष्ट होता है।

उपजैं आछे खेत में, मूरखहू के धान।
सघन होन में धान के, चहिय न गुनी किसान ॥४॥

तो अब मैं घर से सुघर घरनी को बुला कर कुछ गाने बजाने का ढङ्ग जमाऊँ (घूम कर) यही मेरा घर है, चलूँ। (आगे बढ़ कर) अहा! आज तो मेरे घर में कोई उत्सव जान पड़ता है, क्योंकि घर वाले सब अपने अपने काम में चूर हो रहे हैं।

पीसत कोऊ सुगन्ध कोऊ जल भरि कै लावत।
कोऊ बैठि कै रङ्ग रङ्ग की माल बनावत॥
कहुँ तिय गन हुँकार सहिय अति श्रवन सोहावत।
होत मुसल को शब्द सुखद जियको सुनि भावत॥ ५ ॥

जो हो घर से स्त्री को बुलाकर पूछ लेता हूँ (नेपथ्य की ओर)

री गुनवारी सब उपाय की जाननवारी।
घर की राखनवारी सब कछु साधनवारी॥
मो गृह नीति स्वरूप काज सब करन सँवारी।
वेगि आउरी नटी बिलम्ब न करु सुन प्यारी॥ ६ ॥

(नटी आती है)

नटी—आर्य्यपुत्र! * मैं आई, अनुग्रहपूर्वक कुछ आज्ञा दीजिये।

सूत्र०—प्यारी, आज्ञा पीछे दी जायगी, पहिले यह बता कि आज ब्राह्मणों का न्यौता करके तुमने इस इस कुटुम्ब के लोगों पर क्यों

---

*संस्कृत मुहाविरे में पति को स्त्रीयाँ आर्य्यपुत्र कह कर पुकारती हैं।

अनुग्रह किया है ? या आप ही से आज अतिथि लोगों ने कृपा की है कि ऐसे धूम से रसोई चढ़ रही है ?

नटी—आर्य्य ! ब्राह्मणों को न्यौता दिया है।

सूत्र०—क्यों ? किस निमित्त से ?

नटी—चन्द्र ग्रहण लगने वाला है।

सूत्र०—कौन कहता है ?

नटी—नगर के लोगों के मुँह सुना है ?

सूत्र०—प्यारी ! मैंने ज्योतिः शास्त्र के चौसठों[1] अङ्गों में बड़ा परिश्रम किया है। जो हो, रसोई तो होने दो[2] पर आज तो ग्रहण है यह तो किसी ने तुझे धोखा ही दिया है क्योंकि—

चन्द्र[3] बिम्ब पूरन भए क्रूर केतु[4] हठ दाप।

---

१ होरा मुहूर्त्त ताजक जातक रमल इत्यादि।

२ अर्थात् ग्रहण का योग तो कदापि नहीं है। खैर रसोई हो।

३ केतु अर्थात् राक्षस मन्त्री। राक्षस मन्त्री ब्राह्मण था और केवल नाम उसका राक्षस था किन्तु गुण उसमें देवताओं के थे।

४ इस श्लोक का यथार्थ तात्पर्य जानने को काशी संस्कृत विद्यालय के अध्यक्ष जगद्विख्यात पण्डितवर बापूदेव शास्त्री को मैंने पत्र लिखा। क्योंकि टीकाकारों ने 'चन्द्रमा पूर्ण होने पर' यही अर्थ किया है और इस अर्थ से मेरा जी नहीं भरा। कारण यह कि पूर्ण चन्द्र में तो ग्रहण लगता ही है इसमें विशेष क्या हुआ। शास्त्री जी ने जो उत्तर दिया है वह यहाँ प्रकाशित होता है।

श्रीयुत बाबू साहिब को बापूदेव का कोटिशः आशीर्वाद, आपने प्रश्न लिख भेजे उनका संक्षेप से उत्तर लिखता हूं।

बल सों करि हैं ग्रास कह— (नेपथ्य में)
हैं! मेरे जीते चन्द्र को कौन बल से ग्रस सकता है?
सूत्र०— जेहि बुध रच्छत आप ॥७॥

---

१ सूर्य के अस्त हो जाने पर जो रात्रि में अन्धकार होता है यही पृथ्वी की छाया है और पृथ्वी गोलाकार है और सूर्य से छोटी है इसलिये उसकी छाया सूच्याकार (शंकु के आकार) की होती है और यह आकाश में चन्द्र के भ्रमणमार्ग को लाघ के बहुत दूर तक सदा सूर्य से छः राशि के अन्तर पर रहती है और पूर्णिमा के अन्त में चन्द्रमा भी सूर्य से छः राशि के अन्तर पर रहता है। इसलिए जिस पूर्णिमा में चन्द्रमा पृथ्वी की छाया में आ जाता है अर्थात् पृथ्वी की छाया चन्द्रमा के विम्ब पर पड़ती है तभी वह चन्द्र का ग्रहण कहलाता है और छाया जो चन्द्रविम्ब पर देख पड़ती है वही ग्रास कहलाता है। और राहु नामक एक दैत्य प्रसिद्ध है वह चन्द्र ग्रहणकाल में पृथ्वी की छाया में प्रवेश करके चन्द्र को और प्रजा को पीड़ा देता है, इसी कारण से लोक में राहुकृत ग्रहण कहलाता है और उस काल में स्नान, दान, जप, होम इत्यादि करने से वह राहुकृत पीड़ा दूर होती है और बहुत पुण्य होता है।

२ पूर्णिमा में चन्द्रग्रहण होने का कारण ऊपर लिखा ही है और पूर्णिमा में चन्द्रविम्ब भी सम्पूर्ण उज्वल होता है तभी चन्द्रग्रहण होता है।

३ जब कि पूर्णिमा के दिन चन्द्रग्रहण होता है, इससे पूर्णिमा में चन्द्रमा का और बुध का योग कभी नहीं होता (क्योंकि बुध सर्वदा सूर्य के पास रहता है और पूर्णिमा के दिन सूर्य चन्द्रमा से छः राशि के अन्तर पर रहता है, इसलिये बुध भी उस दिन चन्द्र से दूर ही रहता है) यों बुध के योग में चन्द्रग्रहण कभी नहीं हो सकता। इति शिवम्। संवत् १९३७ ज्येष्ठ शुक्ल १५ मंगल दिने, मंगलं मंगले भूयात्।

नटी—आर्य्य! यह पृथ्वी ही पर से चन्द्रमा को बचाना चाहता है ?

सूत्र०—प्यारी मैंने भी नहीं लखा, देखो, अब फिर से यही पढ़ता हूँ और अब जब वह फिर बोलेगा तो मैं उसकी बोली से पहिचान लूंगा कि कौन है।

शास्त्री जी से एक दिन मुझ से इस विषय में फिर वार्त्ता हुई। शास्त्री जी को मैंने मुद्रा-राक्षस की पुस्तक भी दिखलायी। इस पर शास्त्रीजी ने कहा कि मुझको ऐसा मालूम होता है कि यदि उस दिन उपराग का सम्भव होगा तो सूर्यग्रहण का होगा। क्योंकि बुधयोग अमावस्या के पास होता भी है। पुराणों में स्पष्ट लिखा है कि राहु चन्द्रमा का ग्रास करता है और केतु सूर्य का, और इस श्लोक में केतु का नाम भी है इससे भी सम्भव होता है कि सूर्यउपराग रहा हो। तो चाणक्य का कहना भी ठीक हुआ कि केतु हटपूर्वक क्यों चन्द्र को ग्रसा चाहता है अर्थात् एक तो चन्द्रग्रहण का दिन नहीं दूसरे केतु का चन्द्रमा ग्रास का विषय नहीं क्योंकि नन्द-वीर्यजात होने से चन्द्रगुप्त राक्षस का लक्ष्य नहीं है। इस अवस्था में 'चन्द्रम् असम्पूर्ण मण्डल' चन्द्रमा का अधूरा मण्डल यह अर्थ करना पड़ेगा। तब छन्द में 'चन्द्र बिम्ब पूरन भए' के स्थान पर 'बिना चन्द्र पूरन भए' पढ़ना चाहिए।

बुध का बिम्ब प्राचीन भास्कराचार्य के मतानुसार छः कला पन्द्रह विकला के लगभग है। परन्तु नवीनों के मत से केवल दश विकला परम है।

परन्तु इसमें कुछ सन्देह नहीं कि यह ग्रह बहुत छोटा है क्योंकि प्राचीनों को इसका ज्ञान बहुत कठिनता से हुआ है, इसलिए इसका नाम ही बुध, ज्ञ, इत्यादि हो गया। यह पृथ्वी से ६८८३७७ इतने योजन की दूरी पर मध्यम मान से रहता है और सदा सूर्य के अनुचर के समान सूर्य के पास ही रहता है एक पाद अर्थात् तीन राशि भी सूर्य से आगे

(अहो चन्द्र पूरन भए फिर से पढ़ता है)

(नेपथ्य में)

हैं ! मेरे जीते चन्द्र को कौन बल से ग्रस सकता है ?

सूत्र०—(सुन कर) जाना ।

अरे अहै कौटिल्य

नटी—(डर नाट्य करती है)

नहीं जाता । विल्सन ने केतु शब्द से मलयकेतु का ग्रहण किया है । इसमें भी एक प्रकार का अलंकार अच्छा रहता है ।

चमत्कृत, बुद्धिसम्पन्न पण्डित सुधाकर जी ने इस विषय में जो लिखा है, वह विचित्र ही है । वह भी प्रकाश किया जाता है—

करत अधिक अँधियार वह, मिल मिल करि हरिचन्द ।
द्विजराजहु विकसित करत, धनि धनि यह हरिचन्द ॥

श्री बाबू साहब को हमारे अनेक आशीर्वाद,

महाशय !

चन्द्रग्रहण का सम्भव भूछाया के कारण प्रति पूर्णिमा के अन्त में होता है और उस समय में केतु और सूर्य साथ रहते हैं परन्तु केतु और सूर्य का योग यदि नियत संख्या के अर्थात् पाँच राशि सोरह अंश से लेकर छः राशि चौदह अंश के वा ग्यारह राशि सोरह अंश से लेकर बारह राशि चौदह अंश के भीतर होता है तब ग्रहण होता है और यदि योग नियत संख्या के बाहर पड़ जाता है तब ग्रहण नहीं होता है इसलिये सूर्य केतु के योग ही के कारण से प्रत्येक पूर्णिमा में ग्रहण नहीं होता । तब

क्रूरग्रहः स केतुश्चन्द्रमसं पूर्णमण्डलमिदानीम् ।
अभिभवतुमिच्छति बलाद्रक्षत्येनं तु बुधयोगः ॥

इस श्लोक का यथार्थ अर्थ यह है कि क्रूरग्रह सूर्य केतु के साथ चन्द्रमा के पूर्णमण्डल को न्यून करने की इच्छा करता है परन्तु हे बुध !

सूत्र०— दुष्ट टेढ़ी मतिवारो।

नन्दवंश जिन सहजहि निज क्रोधानल जारो।
चन्द्रग्रहण को नाम सुनत निज नृप को मानी॥
इतही आवत चन्द्रगुप्त पै कछु भय जानी॥८॥
तो अब चलो हम लोग चलें।

(दोनों जाते हैं)

इति प्रस्तावना।

योग जो है वही बल से उस चन्द्रमा की रक्षा करता है। यहाँ बुध शब्द पण्डित के अर्थ में सम्बोध है, ग्रहवाची कदापि नहीं है। बुध शब्द को साथ में ले जाने से जो अर्थ होते हैं वे सब अनोखा है। इति।

सं० १९३७ वैशाख शुक्ल ५

ऊँचे ह्वै गुरु बुध कवी, मिलि लरि होत विरूप।
करत समागम सबहिं सो, यह द्विजराज अनूप॥

आपका
पं० सुधाकर।

प्रथम अंक

स्थान—चाणक्य का घर

(अपनी खुली शिखा को हाथ से फटकारता हुआ
चाणक्य आता है)

चाणक्य—बता ! कौन है जो मेरे जीते चन्द्रगुप्त को बल से ग्रसना चाहता है।

सदा दन्ति * के कुम्भ † को जो बिदारै।
ललाई नए चन्द सी जौन धारै॥
जँभाई समै काल सो जौन बाढ़ै।
भलो सिंह को दाँत सो कौन काढ़ै॥ ९॥

और भी

कालसर्पिणी नन्दकुल, क्रोध धूम सी जौन।
अबहूँ बाँधन देत नहिं, अहो सिखा मम कौन॥१०॥
दहन नन्दकुल बन सहज, अति प्रज्वलित प्रताप।
को मम क्रोधानल पतँग, भयो चहत अब पाप॥११॥

शारङ्गरव ! शारङ्गरव !!

(शिष्य आता है)

शिष्य—गुरू जी ! क्या आज्ञा है ?

चाणक्य—बेटा ! मैं बैठना चाहता हूँ।

शिष्य—महाराज ! इस दालान में बेंत की चटाई पहिले ही से बिछी है, आप बिराजिये।

---

* हाथो। † मस्तक।

चाणक्य—बेटा! केवल कार्य में तत्परता मुझे व्याकुल करती है न कि और उपाध्यायों के तुल्य शिष्यजन से दुशी:लता* (बैठकर आप ही आप) क्या सब लोग यह बात जान गये कि मेरे † नन्दवंश के नाश से क्रुद्ध होकर राक्षस, पिता-वध से दुखी मलयकेतु ‡ से मिल कर यवनराज की सहायता लेकर चन्द्रगुप्त पर चढ़ाई किया चाहता है। (कुछ सोचकर) क्या हुआ जब मैं नन्दवंश की बड़ी प्रतिज्ञा रूपी नदी से पार उतर चुका तब यह बात प्रकाश होने ही से क्या मैं इसको न पूरा कर सकूँगा? क्योंकि—

दिसि सरिस रिपु-रमनी-बदन-शशि शोक कारिख लायकै।
लै नीति-पवनहि सचिव-बिटपन छार डारि जराय कै॥
बिनु पुर-निवासी-पच्छिगन-नृप-बंसमूल नसाय कै।
भइ शांति मम क्रोधग्नि यह कुछ दहन हित नहिं पायकै+॥ २॥

और भी

जिन जनन नैं अति सोचसों नृप-भय प्रगट धिक्र नहि कह्यौ।
पर मम अनादर को अहिति वह सोच जिय जिनके रह्यौ॥
ते लखहिं आसन सों गिरायो नन्द सहित समाज कों।
जिमि शिखर तें बनराज क्रोधि गिराबई गजराज को॥१३॥

---

* अर्थात् कुछ तुम लोगों पर दुष्टता से नहीं अनेक काम की घबड़ाहट से बिछी हुई चटाई नहीं देखो।

† नंदवंश अर्थात् नव नंद, एक नंद और उसके आठ पुत्र।

‡ पर्वतेश्वर राजा का पुत्र।

+ अग्नि बिना आधार नहीं जलती।

× नंद ने कुरूप होने के कारण चाणक्य को अपने श्राद्ध से निकाल दिया था।

सो यद्यपि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुका हूँ, तो भी चन्द्रगुप्त के हेतु शस्त्र अब भी धारण करता हूँ। देखो मैंने—

नवनन्दन कों मूल सहित खोद्यो छन भर में।
चन्द्रगुप्त में श्री राखी नलिनी जिमि सर में॥
क्रोध प्रीति सों एक नासि कै एक बसायो।
शत्रु मित्र को प्रगट सबन फल लै दिखलायो॥१५॥

अथवा जब तक राक्षस नहीं पकड़ा जाता तब तक नन्दों के मारने से क्या और चन्द्रगुप्त को राज्य मिलने से ही क्या? (कुछ सोच कर) अहा! राक्षस को नन्दवंश में कैसी दृढ़ भक्ति है! जब तक नन्दवंश का कोई भी जीता रहेगा तब तक वह कभी शूद्र का मन्त्री बनना स्वीकार न करेगा इससे उसके पकड़ने में हम लोगों को निरुद्यम रहना अच्छा नहीं। यही समझ कर तो नन्दवंश का सर्वार्थसिद्ध विचारा तपोवन में चला गया तो भी हमने मार डाला। देखो राक्षस मलयकेतु को मिला कर हमारे बिगाड़ने में यत्न करता ही जाता है (आकाश में देखकर) वाह राक्षस मन्त्री वाह! क्यों न हो! वाह मन्त्रियों में बृहस्पति के समान वाह! तू धन्य है क्योंकि:—

जब लौं रहै सुख राज को तब लौं सबै सेवा करैं।
पुनि राज बिगड़े कौन स्वामी तनिक नहीं चित में धरैं।
जे बिपतिहू मे पालि पूरब प्रीति काज सँवारहीं।
ते धन्य नर तुम सारिखे दुरलभ अहैं संसय नहीं॥१५॥

इसी से तो हम लोग इतना यत्न करके तुम्हें मिलाना चाहते हैं कि तुम अनुग्रह करके चन्द्रगुप्त के मन्त्री बनो, क्योंकि—

मूरख कातर स्वामिभक्त कछु काम न आवै।
पण्डित हू बिन भक्ति काज कछु नहीं बनावै॥

निज स्वारथ की प्रीति करैं ते सब जिमि नारी।
बुद्धि भक्ति दोउ होय तबै सेवक सुखकारी ॥१६॥

सो मैं भी इस विषय में कुछ सोता नहीं हूँ, यथाशक्ति उसी के मिलाने का यत्न करता रहता हूँ। देखो, पर्वतक को चाणक्य ने मारा यह अपवाद न होगा, क्योंकि सब जानते हैं कि चन्द्रगुप्त और पर्वतक मेरे मित्र हैं तो मैं पर्वतक को मार कर चन्द्रगुप्त का पक्ष निर्बल कर दूंगा ऐसी शंका कोई न करेगा, सब यही कहेंगे कि राक्षस ने विषकन्या-प्रयोग करके चाणक्य के मित्र पर्वतक को मार डाला। पर एकान्त में राक्षस ने मलयकेतु के जी में यह निश्चय करा दिया है कि तेरे पिता को मैंने नहीं मारा चाणक्य ही ने मारा, इससे मलयकेतु मुझ से बिगड़ रहा है। जो हो, यदि यह राक्षस लड़ाई करने को उद्यत होगा तो भी पकड़ा जायगा। पर जो हम मलयकेतु को पकड़ें तो लोग निश्चय कर लेंगे कि अवश्य चाणक्य ही ने अपने मित्र इसके पिता को मारा और अब मित्रपुत्र अर्थात् मलयकेतु को मारना चाहता है। और भी, अनेक देश की भाषा, पहिरावा, चाल-व्यवहार जानने वाले अनेक वेषधारी बहुत से दूत मैंने इसी हेतु चारों ओर भेज रक्खे हैं कि वे भेद लेते रहें कि कौन हम लोगों से शत्रुता रखता है कौन मित्र है। और कुसुमपुर निवासी नन्द के मन्त्री और सम्बन्धियों के ठीक-ठीक वृत्तान्त का अन्वेषण हो रहा है, वैसे ही भद्रभटादिकों को बड़े-बड़े पद देकर चन्द्रगुप्त के पास रख दिया है और भक्ति की परीक्षा लेकर बहुत से अप्रमादी पुरुष भी शत्रु से रक्षा करने को नियत कर दिए हैं। वैसे ही मेरा सहपाठी मित्र विष्णु शर्म्मा नामक ब्राह्मण जो शुक्रनीति और चौंसठों कला से ज्योतिष शास्त्र में बड़ा प्रवीण है, उसे

मैंने पहिले ही योगी बना कर नन्दवध की प्रतिज्ञा के अनन्तर ही कुसुमपुर में भेज दिया है, वह वहाँ नन्द के मन्त्रियों से मित्रता, विशेष करके राक्षस का अपने पर बड़ा विश्वास बढ़ा कर सब काम सिद्ध करेगा, इससे मेरा सब काम बन गया है, परन्तु चन्द्रगुप्त सब राज्य का भार मेरे ही ऊपर रख कर सुख करता है। सच है, जो अपने बल बिना और अनेक दुःखों के भोगे बिना राज्य मिलता है वही सुख देता है। क्योंकि:—

अपने बल सों लावही, यद्यपि मारि शिकार।
तदपि सुखी नहिं होत हैं, राजा सिंह कुमार ॥१७॥

(*यम का चित्र हाथ में लिये योगी का वेष धारण किये दूत आता है)

दूत—अरे, और देव को काम नहि, जम को करो प्रनाम।
जो दूजन के भक्त कों, प्रान हरत परिनाम ॥१८॥

और

उलटे तेहूँ बमत हैं, काज किये अति हेत।
जो जम जी सब को हरत, सोइ जीविका देत ॥१६॥

तो इस घर में चल कर जमघट दिखा कर गावें।

(घूमता है)

शिष्य—रावलजी ! ड्यौढ़ी के भीतर न जाना।

दूत—अरे ब्राह्मण ! यह किस का घर है ?

शिष्य—हम लोगों के परम प्रसिद्ध गुरु चाणक्यजी का।

दूत—(हंस कर) अरे ब्राह्मण ! तब तो यह मेरे गुरु भाई ही का घर है, मुझे भीतर जाने दे, मैं उसको धर्मोपदेश करूंगा।

---

*उस काल में एक चाल के फकीर जम का चित्र दिखला कर संसार की अनित्यता के गीत गाकर भीख मांगते थे।

शिष्य—(क्रोध से) छिः मूर्ख ! क्या तू गुरुजी से भी धर्म्म विशेष जानता है ?

दूत—अरे ब्राह्मण ! क्रोध मत कर, सभी सब कुछ नहीं जानते कुछ तेरा गुरु जानता है, कुछ मेरे से लोग जानते हैं।

शिष्य—(क्रोध से) मूर्ख ! क्या तेरे कहने से गुरु जी की सर्वज्ञता उड़ जायगी ?

दूत—भला ब्राह्मण ! जो तेरा गुरु सब जानता है तो बतलावे कि चन्द्र किसको नहीं अच्छा लगता ?

शिष्य—मूर्ख ! इसको जानने से गुरु को क्या काम ?

दूत—यही तो कहता हूँ कि यह तेरा गुरु ही समझेगा कि इसके जानने से क्या होता है ? तू तो सूधा मनुष्य है, तू केवल इतना ही जानता है कि कमल को चन्द्र प्यारा नहीं है। देख—

जदपि होत सुन्दर कमल, उलटो तदपि सुभाव।
जो नित पूरनचन्द सों, करत विरोध नाव ॥२८॥

चाणक्य—(सुन कर आप ही आप) अहा ! "मैं चन्द्रगुप्त के बैरियों को जानता हूँ" यह कोई गूढ़ बचन से कहता है।

शिष्य—चल मूर्ख ! क्या बेठिकाने की बकवाद कर रहा है।

दूत—अरे ब्राह्मण ! यह सब ठिकाने की बातें होगी।

शिष्य—कैसे होंगी ?

दूत—जो कोई सुनने वाला और समझने वाला होय।

चाणक्य—रावलजी ! बेखटके चले आइये, यहाँ आपको सुनने और समझने वाले मिलेंगे।

दूत—आया (आगे बढ़ कर) जय हो महाराज की।

चाणक्य—(देख कर आप ही आप) कामों की भीड़ से यह नहीं निश्चय होता कि निपुणक को किस बात के जानने के लिये भेजा था। अरे जाना, इसे लोगों के जी का भेद लेने को भेजा था (प्रकाश) आओ, कहो, अच्छे हो? बैठो।

दूत—जो आज्ञा। (भूमि में बैठता है)।

चाणक्य—कहो, जिस काम को गये उसका क्या किया? चन्द्रगुप्त को लोग चाहते हैं या नहीं?

दूत—महाराज! आप ने पहिले ही से ऐसा प्रबन्ध किया है कि कोई चन्द्रगुप्त से विराग न करे, इस हेतु सारी प्रजा महाराज चन्द्रगुप्त में अनुरक्त है, पर राक्षस मंत्री के दृढ़ मित्र तीन ऐसे हैं जो चन्द्रगुप्त की वृद्धि नहीं सह सकते।

चाणक्य—(क्रोध से) अरे! कह, कौन अपना जीवन नहीं सह सकते, उनके नाम तू जानता है?

दूत—जो नाम न जानता तो आपके सामने क्यों कर निवेदन करता?

चाणक्य—मैं सुना चाहता हूँ कि उनके क्या नाम हैं?

दूत—महाराज सुनिये। पहले तो शत्रु का पक्षपात करने वाला क्षपणक है।

चाणक्य—(हर्ष से आप ही आप) हमारे शत्रुओं का पक्षपाती क्षपणक है? (प्रकाश) उसका नाम क्या है।

दूत—जीवसिद्धि नाम है।

चाणक्य—तू ने कैसे जाना कि क्षपणक मेरे शत्रुओं का पक्षपाती है?

दूत—क्योंकि उसने राक्षस मन्त्री के कहने से देव पर्वतेश्वर पर विषकन्या का प्रयोग किया।

चाणक्य—(आप ही आप) जीवसिद्धि तो हमारा गुप्त दूत है (प्रकाश) हाँ और कौन है ?

दूत—महाराज ! दूसरा राक्षस मंत्री का प्यारा सखा शकटदास कायस्थ है।

चाणक्य—(हंस कर आप ही आप) कायस्थ कोई बड़ी बात नहीं है तो भी क्षुद्र शत्रु की भी उपेक्षा नहीं करना चाहिए, इसी हेतु ता मैंने सिद्धार्थक को उसका मित्र बनाकर उसके पास रक्खा है, (प्रकाश) हाँ, तीसरा कौन है।

दूत—(हँस कर) तीसरा तो राक्षस मंत्री का मानों हृदय ही पुष्पपुरवासी चंदनदास नामक वह बड़ा जौहरी है जिस के घर में मंत्री राक्षस अपना कुटुम्ब छोड़ गया है।

चाणक्य—(आप ही आप) अरे यह उसका बड़ा अंतरंग मित्र होगा। क्योंकि पूरे विश्वास बिना राक्षस अपना कुटुम्ब यों न छोड़ जाता (प्रकाश) भला तूने यह कैसे जाना कि राक्षस मंत्री वहाँ अपना कुटुम्ब छोड़ गया ?

दूत—महाराज ! इस "मोहर" की अंगूठी से आप को विश्वास होगा (अँगूठी देता है)।

चाणक्य— अँगूठी लेकर और उसमें राक्षस का नाम बाँच कर प्रसन्न हो कर आप ही आप) आह ! मै समझता हूँ कि राक्षस ही मेरे हाथ लगा (प्रकाश) भला तुमने यह अँगूठी कैसे पाई ? मुझसे सब वृत्तान्त तो कहो।

दूत—सुनिये। जब मुझे आपने नगर के लोगों का भेद लेने भेजा तब मैंने यह सोचा कि बिना भेस बदले मैं दूसरे के

घर में न घुसने पाऊँगा, इस से मैं जोगी का भेस कर के जमराज का चित्र हाथ में लिये फिरता फिरता चन्दनदास जौहरी के घर में चला गया और वहाँ चित्र फैला कर गीत गाने लगा।

चाणक्य—हाँ, तब ?

दूत—तब महाराज ! कौतुक देखने को एक पाँच बरस का बड़ा सुन्दर बालक एक परदे के आड़ से बाहर निकला उस समय परदे के भीतर स्त्रियों में बड़ा कलकल हुआ कि "लड़का कहाँ गया" इतने में एक स्त्री ने द्वार के बाहर मुख निकाल कर देखा और लड़के को झट पकड़ ले गई, पर पुरुष की उँगली से स्त्री की उँगली पतली होती है, इससे द्वार ही पर यह अँगूठी गिर पड़ी और मैं उस पर राक्षस मन्त्री का नाम देख कर आप के पास उठा लाया।

चाणक्य—वाह वाह ! क्यों न हो, अच्छा जाओ, मैंने सब सुन लिया ! तुम्हें इसका फल शीघ्र ही मिलेगा।

दूत—जो आज्ञा (जाता है)।

चाणक्य—शारंगरव ! शारंगरव !

शिष्य—(आकर) आज्ञा, गुरूजी ?

चाणक्य—बेटा ! कलम दावात कागज तो लाओ।

शिष्य—जो आज्ञा (बाहर जाकर ले आता है) गुरू जी ! ले आया।

चाणक्य—(लेकर आप ही आप) क्या लिखूँ, इसी पत्र से राक्षस को जीतना है।

(प्रतिहारी आती है)

प्रतिहारी—जय हो महाराज की जय हो।

चाणक्य—(हर्ष से आप ही आप) वाह वाह कैसा सगुन हुआ कि कार्य्यारम्भ में ही जय शब्द सुनाई पड़ा। (प्रकाश) कहो शोणोत्तरा क्यों आई हो ?

प्र०—महाराज ! राजा चन्द्रगुप्त ने प्रणाम कहा है और पूछा है कि मैं पर्व्वतेश्वर की क्रिया किया चाहता हूँ इससे आपकी आज्ञा हो तो उनके पहिरे आभरणों को पण्डित ब्राह्मणों को दूँ।

चाणक्य—(हर्ष से आप ही आप) वाह चन्द्रगुप्त वाह, क्यों न हो, मेरे जी की बात सोच कर सँदेशा कहला भेजा है (प्रकाश) शोणोत्तरा ! चन्द्रगुप्त से कहो कि "वाह ! बेटा वाह ! क्यों न हो बहुत अच्छा विचार किया, तुम व्यवहार में बड़े ही चतुर हो इससे जो सोचा है सो करो, पर पर्व्वतेश्वर के पहिरे हुए आभरण गुणवान् ब्राह्मणों को देने चाहिए, इस से ब्राह्मण मैं चुन के भेजूँगा।"

प्र०—जो आज्ञा महाराज ! (जाती है)।

चाणक्य—शारङ्गरव ! विश्वावसु आदि तीनों भाइयों से कहो कि जा कर चन्द्रगुप्त से आभरण ले कर मुझ से मिलें।

शिष्य—जो आज्ञा (जाता है)।

चाणक्य—(आप ही आप) पीछे तो यह लिखें पर पहिले क्या लिखें (सोच कर) अहा ! दूतों के मुख से ज्ञात हुआ है कि उस म्लेच्छराज सेना में से प्रधान पाँच राजा परम भक्ति से राक्षस की सेवा करते हैं।

प्रथम चित्रवर्म्मा कुलूत को राजा भारी।
मलय देशपति सिंहनाद दूजो बलधारी॥
तीजो पुसकरनयन अहै कश्मीर देश को।
सिन्धुसेन पुनि सिन्धु नृपति अतिउग्रभेषको॥
मेघाक्ष पाँचवों प्रबल अति; बहु हय जुतपारस नृपति।
अब चित्रगुप्त इन नाम कों मेटहिं हम जब लिखहिं इति*

(कुछ सोच कर) अथवा न लिखूं अभी सब बात यों रहे (प्रकाश) शारंगरव! शारंगरव!!

शिष्य—(आकार) आज्ञा गुरुजी!

चाणक्य—बेटा! वैदिक लोग कितना भी अच्छा लिखें तो भी उनके अक्षर अच्छे नहीं होते इससे सिद्धार्थक से कहो (कान में कह कर) कि वह शकटदास के पास जाकर यह सब बात यों लिखवा कर और "किसी का लिखा कुछ कोई आप ही बांचे" यह सरनामे पर नाम बिना लिखवा कर हमारे पास आवे और शकटदास से यह न कहे कि चाणक्य ने लिखवाया है।

शिष्य—जो आज्ञा (जाता है)।

चाणक्य—(आप ही आप) अहा! मलयकेतु को तो जीत लिया।

(चिट्ठी लेकर सिद्धार्थक आता है)

सि०—जय हो, महाराज की जय हो। महाराज! यह शकटदास के हाथ का लेख है।

---

* अर्थात् अब जब हम इनका नाम लिखते हैं तो निश्चय ये सब मरेंगे। इससे अब चित्रगुप्त अपने खाते से इसका नाम काट दें, न ये जीते रहेंगे न चित्रगुप्त को लेखा रखना पड़ेगा।

चाणक्य—(लेकर देखता है) वाह कैसे सुन्दर अक्षर हैं ! (पढ़ कर) बेटा, इस पर यह मोहर कर दो।

सि०—जो आज्ञा (मोहर करके) महाराज, इस पर मोहर हो गई, अब और कहिए क्या आज्ञा है ?

चाणक्य—बेटा जी ! हम तुम्हें एक अपने निज के काम में भेजा चाहते है।

सि०—(हर्ष से) महाराज, यह तो आपकी कृपा है, कहिये, यह दास आपके कौन काम आ सकता है ?

चाणक्य—सुनो, पहिले जहाँ सूली दी जाती है वहाँ जाकर फाँसी देने वालों को दाहिनी आँख दबा कर समझा देना* और जब वे तेरी बात समझ कर डर से इधर उधर भाग जायँ तब तुम शकटदास को लेकर राक्षस मन्त्री के पास चले जाना। वह अपने मित्र के प्राण बचाने से तुम पर बड़ा प्रसन्न होगा और तुम्हें पारितोषिक देगा, तुम उसको लेकर कुछ दिनों तक राक्षस ही के पास रहना और जब और भी लोग पहुँच जायँ तब यह काम करना (कान में समाचर कहता है)।

सि०—जो आज्ञा महाराज।

चाणक्य—शारंगरव ! शारंगरव !

शिष्य—(आकर) आज्ञा गुरुजी ?

चाणक्य—कालपाशिक और दण्डपाशिक से यह कह दो कि चन्द्रगुप्त आज्ञा करता है कि जीवसिद्धि क्षपणक ने राक्षस के कहने से विषकन्या का प्रयोग करके

---

* चाण्डालों को पहले से समझा दिया था कि जो आदमी दाहिनी आँख दबाये उसको हमारा मनुष्य समझ कर तुम चटपट हट जाना।

पर्वतेश्वर को मार डाला, यही दोष प्रसिद्ध करके अपमान-पूर्वक उसको नगर से निकाल दें।

शिष्य—जो आज्ञा (घूमता है)

चाणक्य—बेटा! ठहर- सुन, और वह जो शकटदास कायस्थ है वह राक्षस के कहने से नित्य हम लोगों की बुराई करता है, यही दोष प्रकट करके उसको सूली देदें और उसके कुटुम्ब को कारागार में भेज दें।

शिष्य—जो आज्ञा महाराज! (जाता है)।

चाणक्य—(चिन्ता करके आप ही आप) हा! क्या किसी भांति यह दुरात्मा राक्षस पकड़ा जायगा?

सि०—महाराज! लिया।

चाणक्य—(हर्ष से आप ही आप) अहा! क्या राक्षस को ले लिया? (प्रकाश) कहो, क्या पाया?

सि०—महाराज! आपने जो सन्देशा कहा वह मैंने भली भाँति समझ लिया, अब काम पूरा करने जाता हूँ।

चाणक्य—(मोहर और पत्र देकर) सिद्धार्थक! जा तेरा काम सिद्ध हो।

सि०—जो आज्ञा (प्रमाण करके जाता है)

शिष्य—(आकर) गुरूजी, कालपाशिक दण्डपाशिक आपसे निवेदन करते हैं कि महाराज चन्द्रगुप्त की आज्ञा पूर्ण करने जाते हैं।

चाणक्य—अच्छा, बेटा! मै चन्दनदास जौहरी को देखना चाहता हूँ।

शिष्य—जो आज्ञा (बाहर जाकर चन्दनदास को लेकर आता है) इधर आइये सेठजी!

चन्दन०—(आप ही आप) यह चाणक्य ऐसा निर्दय है कि जो एकाएक किसी को बुलावे तो लोग बिना अपराध भी इससे डरते हैं, फिर कहाँ मैं इसका नित्य का अपराधी इसी से मैंने धनसेनादिक तीन महाजनों से कह दिया है कि दुष्ट चाणक्य जो मेरा घर लूट ले तो आश्चर्य नहीं। इससे स्वामी राक्षस का कुटुम्ब कहीं और ले जाओ, मेरी जो गति होनी है वह हो।

शिष्य—इधर आइये साह जी!

चन्दन०—आया (दोनों घूमते हैं)।

चाणक्य—(देखकर) आइये साह जी!, कहिये अच्छा तो है? बैठिये यह आसन है।

चन्दन०—(प्रणाम करके) महाराज! आप नहीं जानते कि अनुचित सत्कार अनादर से भी विशेष दुःख का कारण होता है इससे मैं पृथ्वी ही पर बैठूँगा।

चाणक्य—वाह! आप ऐसा न कहिए, आपको तो हम लोगों के साथ यह व्यवहार उचित ही है। इससे आप आसन पर बैठिये।

चन्दन०—(आप ही आप) कोई बात तो इस दुष्ट ने न जानी (प्रकाश) जो आज्ञा (बैठता है)।

चाणक्य—कहिए साह जी! चन्दनदास जी! आपको व्यापार में लाभ तो होता है न?

चन्दन०—महाराज, क्यों नहीं, आपकी कृपा से सब बनज-व्यापार अच्छी भांति चलता है।

चाणक्य—कहिए साह जी? पुराने राजाओं के गुण चन्द्रगुप्त के दोषों को देख कर कभी लोगों को स्मरण आते हैं?

चन्दन०—(कान पर हाथ रख कर) राम ! राम ! शरद ऋतु के पूर्ण चन्द्रमा की भांति शोभित चन्द्रगुप्त को देख कर कौन नहीं प्रसन्न होता ?

चाणक्य—जो प्रजा ऐसी प्रसन्न है तो राजा भी प्रजा से कुछ अपना भला चाहते हैं।

चन्दन०—महाराज ! जो आज्ञा, मुझसे कौन और कितनी वस्तु चाहते हैं ?

चाणक्य—सुनिये साह जी ! यह नन्द का राज नहीं है, चन्द्रगुप्त का राज्य है, धन से प्रसन्न होने वाला तो वह लालची नन्द ही था, चन्द्रगुप्त तो तुम्हारे ही भले से प्रसन्न होता है।

चन्दन०—(हर्ष से) महाराज, यह तो आपकी कृपा है।

चाणक्य—पर यह तो मुझसे पूछिये कि वह भला किस प्रकार से होगा ?

चन्दन०—कृपा करके कहिये।

चाणक्य—सौ बात की एक बात यह है कि राजा के विरुद्ध कामों को छोड़ो।

चन्दन०—महाराज ! वह कौन अभागा है जिसे आप राजविरोधी समझते हैं ?

चाणक्य—उसमें पहिले तो तुम्हीं हो।

चन्दन०—(कान पर हाथ रख कर) राम ! राम ! राम ! भला तिनके से और अग्नि से कैसा विरोध।

चाणक्य—विरोध यही है कि तुमने राजा के शत्रु राक्षस मन्त्री का कुटुम्ब अब तक घर में रख छोड़ा है।

चन्दन०—महाराज ! यह किसी दुष्ट ने आप से झूँठ कह दिया है।

चाणक्य—सेठ जी ! डरो मत, राजा के भय से पुराने राजा के सेवक लोग अपने मित्रों के पास विना चाहे भी कुटुम्ब छोड़ कर भाग जाते हैं, इससे इसके छिपाने ही में दोष होगा।

चन्दन०—महाराज ! ठीक है, पहिले मेरे घर पर राक्षस मन्त्री का कुटुम्ब था।

चाणक्य पहिले तो कहा कि किसी ने झूँठ कहा है। अब कहते हो, था, यह गबड़े की बात कैसी ?

चन्दन०—महाराज ! इतना ही मुझसे बातों में फेर पड़ गया।

चाणक्य—सुनो, चन्द्रगुप्त के राज्य में छल का विचार नहीं होता, इससे राक्षस का कुटुम्ब दो, तो तुम सच्चे हो जाओगे।

चन्दन०—महाराज ! मैं कहता हूँ न, पहिले राक्षस का कुटुम्ब था

चाणक्य—तो अब कहाँ गया ?

चन्दन०—न जाने कहाँ गया।

चाणक्य—(हँस कर) सुनो सेठ जी ! तुम क्या नहीं जानते कि साँप तो सिर पर बूटी पहाड़ पर। और जैसा चाणक्य ने नन्द को.......(इतना कह कर लाज से चुप रह जाता है)।

चन्दन०—(आप ही आप)

प्रिया दूर घन गरजहीं, अहो दुःख अति घोर !
औषधि दूर हिमाद्रि पै, सिर पै सर्प कठोर ॥

चाणक्य—चन्द्रगुप्त को अब राक्षस मन्त्री राज पर से उठा देगा यह आशा छोड़ो, क्योंकि देखो—

नृप नन्द जीवत नीतिबल सों, मति रही जिन की भली।
ते "वक्रनासादिक" सचिव नहिं, थिर सके करि नसि चली
सो श्री सिमिटि अब आय लिपटी, चन्द्रगुप्त नरेश सों।
तेहि दूर को करि सकै चाँदनि, छुटत कहुँ राकेस सों ? ?

और भी

"सदा दन्ति के कुम्भ को" इत्यादि फिर से पढ़ता है।

चन्दन०—(आप ही आप) अब तुझको सब कहना फबता है।

(नैपथ्य में) हटो हटो—

चाणक्य—शारंगरव ! यह क्या कोलाहल है देख तो ?

शिष्य—जो आज्ञा (बाहर जाकर फिर आकर) महाराज राजा चन्द्रगुप्त की आज्ञा से राजद्वेषी जीवसिद्धि क्षपणक निरादर पूर्वक नगर से निकाला जाता है।

चाणक्य—क्षपणक ! हा ! हा ! अथवा राजविरोध का फल भोगे। सुनो चन्दनदास ! देखो राजा अपने द्वेषियों को कैसा कड़ा दण्ड देता है, मैं तुम्हारे भले की कहता हूँ, सुनो और राक्षस का कुटुम्ब देकर जन्म भर राजा की कृपा से सुख भोगो।

चन्दन०—महाराज ! मेरे घर राक्षस मन्त्री का कुटुम्ब नहीं है।

(नेपथ्य मे कलकल होता है)

चाणक्य—शारंगरव ! देख तो यह क्या कलकल होता है ?

शिष्य—जो आज्ञा (बाहर जाकर फिर आता है) महाराज ! राजा की आज्ञा से राजद्वेषी शकटदास कायस्थ को सूली देने ले जाते हैं।

चाणक्य—राजविरोध का फल भोगे। देखो सेठ जी ! राजा अपने विरोधियों को कैसा कड़ा दण्ड देता है, इससे

राक्षस का कुटुम्ब छिपाना वह कभी न सहेगा; इसी से उसका कुटुम्ब देकर तुमको अपने प्राण और कुटुम्ब बचाना हो तो बचाओ।

चन्दन०—महाराज। क्या आप मुझे डर दिखाते हैं, मेरे यहाँ अमात्य राक्षस का कुटुम्ब नहीं है, पर जो होता तो भी मैं न देता।

चाणक्य—क्या चन्दनदास! तुमने यही निश्चय किया है?

चन्दन०—हाँ! मैंने यही दृढ़ निश्चय किया है।

चाणक्य—(आप ही आप) वाह चन्दनदास! वाह! क्यों न हो!

दूजे के हित प्राण दे, करै धर्म्म प्रतिपाल।
को ऐसो शिवि के बिना, दूजो है या काल॥

(प्रकाश) क्या चन्दनदास, तुमने यही निश्चय किया है?

चन्दन०—हाँ! हाँ! मैंने यही निश्चय किया है।

चाणक्य—(क्रोध से) दुरात्मा दुष्ट बनिया! देख राजकोप का कैसा फल पाता है!

चन्दन०—(बाँह फैलाकर) मैं प्रस्तुत हूँ, आप जो चाहिए अभी दण्ड दीजिए।

चाणक्य—(क्रोध से) शारंगरव! कालपाशिक, दण्डपाशिक से मेरी आज्ञा कहो कि अभी इस दुष्ट बनिये को दण्ड दें। नहीं, ठहरो, दुर्गपाल विजयपाल से कहो कि इस के घर का सारा धन ले लें और इसको कुटुम्ब समेत पकड़ कर बाँध रक्खें, तब तक मैं चन्द्रगुप्त से कहूँ, वह आप ही इसके सर्वस्व और प्राण हरण की आज्ञा देगा।

शिष्य—जो आज्ञा महाराज! सेठ जी इधर आइये।

चन्दन०—लीजिए महाराज! यह मैं चला (उठ कर चलता) (आप ही आप) अहा! मैं धन्य हूँ कि मित्र के हेतु मेरे प्राण जाते हैं, अपने हेतु तो सभी मरते हैं।

(दोनों बाहर जाते हैं)

चाणक्य—(हर्ष से) अब ले लिया है राक्षस को, क्योंकि:—

जिमि इन तृन सम प्रान तजि, कियो मित्र को त्रान।
तिमि सोहू निज मित्र अरु, कुल रखि हैं दै प्रान॥

(नेपथ्य में कलकल)

चाणक्य—शारंगरव!

शिष्य—(आकर) आज्ञा गुरुजी?

चाणक्य—देख तो यह कैसी भीड़ है?

शिष्य—(बाहर जाकर फिर आश्चर्य से आकर) महाराज! शकटदास को सूली पर से उतार कर सिद्धार्थक लेकर भाग गया

चाणक्य—(आप ही आप) वाह सिद्धार्थक! काम का आरम्भ तो किया (प्रकाश) हैं क्या ले गया? (क्रोध से) बेटा! दौड़ कर भागुरायण से कहो कि उसको पकड़े।

शिष्य—(बाहर जाकर आता है) (विषाद से) गुरुजी! भागुरायण तो पहिले ही से कहीं भाग गया है।

चाणक्य—(आप ही आप) निज काज साधने के लिये जाय (क्रोध से प्रकाश) भद्रभट, पुरुषदत्त, हिंगुराज, बलगुप्त, राजसेन, रोहिताक्ष और विजयवर्म्मा से कहो कि दुष्ट भागुरायण को पकड़ें।

शिष्य—जो आज्ञा (बाहर जाकर फिर आकर विषाद से) महाराज! बड़े दुख की बात है कि सब बेड़े का बेड़ा

हलचल हो रहा है। भद्रभट इत्यादि तो सब पिछली ही रात भाग गये।

चाणक्य—(आप ही आप) सब काम सिद्ध करें (प्रकाश) बेटा, सोच मत करो।

जे बात कछु जिय धारि भागे भले सुख सों भागहीं।
जे रहे तेहू जाहिं तिन को, सोच मोहि जिय कछु नहीं॥
सत सैन हूँ सों अधिक साधिनिकाज की जेहिजगकहै।
सो नन्दकुल की खननहारी बुद्धि नित मो में रहै॥

(उठकर और आकाश की ओर देख कर) अभी भद्रभटादिकों को पकड़ता हूँ (आप ही आप) राक्षस! अब मुझसे भाग के कहाँ जायगा, देख—

एकाकी मद गलित गज, जिमि नर लावहिं बांधि।
चन्द्रगुप्त के काज मैं, तिमि तोहि धरि हैं साधि॥

(सब जाते हैं)

(जवनिका गिरती है)

इति प्रथमाङ्क

द्वितीय अंक

स्थान—राजपथ

(मदारी आता है)

मदारी—अललललललल, नाग लाये साँप लाये !

तन्त्र युक्ति सब जानहीं, मण्डल रचहिं विचार।
मन्त्र रच्छहीं ते करहिं, अहि नृप को उपचार ॥

(*आकाश मे देख कर) महाराज ! क्या कहा ? तू कौन है ? महाराज ! मैं जीर्णविष नाम सँपेरा हूँ (फिर आकाश की ओर देख कर) क्या कहा कि मैं भी साँप का मंत्र जानता हूँ खेलूँगा ? तो आप काम क्या करते हैं, यह तो कहिये ? (फिर आकाश की ओर देख कर) क्या कहा—मैं राज सेवक हूँ ? तो आप तो साँप के साथ खेलते हैं। (फिर ऊपर देख कर) क्या कहा, कैसे ? मन्त्र और जड़ी बिन मदारी और आंकुस बिन मतवाले हाथी का हाथीवान, वैसे ही नये अधिकार के संग्राम विजयी राजा के सेवक ये तीनों अवश्य नष्ट होते हैं (ऊपर देख कर) यह देखते २ कहाँ चला गया ? (फिर ऊपर देख कर) क्या महाराज ! पूछते हो कि इन पिटारियों में क्या है ? इन पिटारियों मेरी जीविका के सर्प हैं। (फिर ऊपर देख कर) क्या कहा कि मैं देखूँगा ? वाह वाह महाराज देखिये देखिये, मेरी बोहनी हुई, कहिये इसी स्थान पर खोलूँ ? परन्तु यह स्थान अच्छा नहीं है, यदि आपको देखने की इच्छा हो तो आप इस स्थान में आइये मैं दिखाऊँ, (फिर

---

* 'आकाश में देख कर' या 'ऊपर देख कर' का आशय यह है मानो दूसरे से बात करता है।

आकाश की ओर देख कर) क्या कहा कि यह स्वामी राक्षस मन्त्री का घर है, इसमें मैं घुसने न पाऊँगा, तो आप जायँ, महाराज ! मैं तो अपनी जीविका के प्रभाव से सभी के घर आता-जाता हूँ। अरे क्या वह गया ? (चारों ओर देखकर) अहा ! बड़े आश्चर्य की बात है, जब मैं चाणक्य की रक्षा में चन्द्रगुप्त को देखता हूँ तब समझता हूँ कि चन्द्रगुप्त ही राज्य करेगा, पर जब राक्षस की रक्षा में मलयकेतु को देखता हूँ तब चन्द्रगुप्त का राज्य गया सा दिखोई देता है। क्योंकि—

चाणक्य ने लै जदपि बाँधी बुद्धि रूपी डोर सों।
करि अचल लक्ष्मी मौर्य्यकुल में नीति के निज जोरसों॥
पै तदपि राक्षस चातुरी करि हाथ में ताकौ करै।
गहि ताहि खींचत आपुनी दिस मोहि यह जानी परै॥

सो इन दोनों परम नीति चतुर मन्त्रियों के विरोध में नन्द-कुल की लक्ष्मी संशय में पड़ी है।

दोऊ सचिव विरोध सों, जिमि बन जुग गजराय।
हथिनी सी लक्ष्मी विचल, इत उत झोंका खाय॥

तो चलूं अब मन्त्री राक्षस से मिलूँ।

(जवनिका उठती है और आसन पर बैठा राक्षस और पास प्रियम्बदक नामक सेवक दिखाई देते हैं)

राक्षस—(ऊपर देख कर आँखो में आँसू भर कर) बड़े कष्ट की बात है—

गुन-नीति-बल सों जीति अरि जिमि, आप जादवगन हयो।
तिमि नन्दको यह विपुलकुल, विधि बामसों सब नसि गयो॥
यहि सोच मे मोहि दिवस अरु निशि, नित्य जागत बीतहीं।
यह लखौ चित्र विचित्र मेरे भाग के बिनु भीतहीं॥

अथवा

बिनु भक्ति भूले, बिनहिं स्वारथ हेतु, हम यह पन लियो।
बिनु प्राण के भय, बिनु प्रतिष्ठा लाभ, सब अबलौं कियो॥
सब छाँडि के परदासता एहि हेत, नित प्रति हम करें।
जो स्वर्ग में हूँ स्वामि मम निज शत्रु हत लखि सुख भरें॥

(आकाश की ओर देख कर दुःख से) हा! भगवती लक्ष्मी! तू बड़ी अगुणज्ञा है। क्योंकि—

निज तुच्छ सुख के हेतु तजि, गुनरासि नन्द नृपाल को।
अब शूद्र में अनुरक्त ह्वै लपटी सुधा मनु व्याल कों॥
ज्यों मत्त गज के मरत मद की धर ता साथहि नसै।
त्यों नन्द के साथहि नसी किन निलज अजहूँ जग बसै॥

अरे पापिन!

का जग में कुलवन्त नृप, जीवत रह्यो न कोय?।
जो तू लपटी शूद्र सों नीच गामिनी होय॥

अथवा

बारबधू जन को अहै, सहजहिं चपल सुभाव।
तजि कुलीन गुनियन करहि, ओछे जन सों चाव॥

तो हम भी अब तेरा आधार ही नाश किये देते हैं (कुछ सोच कर) हम मित्रवर चन्दनदास के घर अपना कुटुम्ब छोड़ कर बाहर चले आये सो अच्छा ही किया। एक तो अभी कुसुमपुर को चाणक्य घेरा नहीं चाहता, दूसरे यहाँ के निवासी महाराज मे अनुरक्त हैं, इससे हमारे सब उद्योगों में सहायक होते हैं। वहाँ भी विषादिक से चन्द्रगुप्त के नाश करने को और सब प्रकार से शत्रु का दाँव-घात व्यर्थ करने को बहुत साधन देकर शकटदास को छोड़ ही दिया है। प्रतिक्षण शत्रुओं का भेद लेने और उसका उद्योग नाश करने को भी जीवसिद्धि इत्यादि सुहृद नियुक्त ही हैं। सो अबतो—

विषवृक्ष अहिसुत, सिहपोत समान जा दुखरास कों।
नृपनन्द निजसुत जानि पाल्यौ, सकुल निज असुनाश कों॥
ता चन्द्रगुप्तहि बुद्धि सर मम तुरत मारि गिराइ हैं।
जो दुष्ट दैव कवच बनि नहिं असह आड़े आइ हैं॥

(कंचुकी आता है)

कंचुकी—(आप ही आप)

नृपनन्द काम समान चानक-नीति-जर जरजर भयो।
पुनि धर्म्म सम पुर देह सों नृप चन्द्र क्रम सों बढ़ि लयो॥
अवकाश लहि तेहि लोभ राक्षस जदपि जीतन जाइ हैं।
पै सिथिल बल भै नाहिं कोउ बिधि चन्द्र पै जय पाइ हैं॥

(देख कर) यह मन्त्री राक्षस हैं (आगे बढ़ कर) मन्त्री! आपका कल्याण हो।

राक्षस—जाजलक! प्रणाम करता हूँ। अरे प्रियम्बदक! आसन ला।

प्रियम्वदक—(आसन लाकर) यह आसन है, आप बैठें।

कंचुकी—(बैठ कर) मन्त्री! कुमार मलयकेतु ने आपको यह कहा है कि "आपने बहुत दिनों से अपने शरीर का सब श्रृङ्गार छोड़ दिया है इससे मुझे बड़ा दुःख होता है। यद्यपि आपको अपने स्वामी के गुण नहीं भूलते और उनके वियोग के दुःख मे यह सब कुछ नहीं अच्छा लगता तथापि मेरे कहने से आप इनको पहिरें।" (आभरण दिखाता है) मन्त्री! ये आभरण कुमार ने अपने अङ्ग से उतार कर भेजे हैं आप इन्हें धारण करें।

राक्षस—जाजलक! कुमार से कहदो कि तुम्हारे गुणों के आगे मैं स्वामी के गुण भूल गया। पर—

इन दुष्ट बैरिन सों दुखी निज अङ्ग, नाहिं सँवारिहौं।
भूषन बसन सिंगार तब लौं हौं, न तन कछु धारिहौं॥
जब लो न सब रिपु नासि, पाटलिपुत्र फेर बसाइहौं।
हे कुंवर! तुम को राज दै, सिर अचल छत्र फिराइहौं॥

चुकी—अमात्य! आप जो न करो सो थोड़ा है, यह बात कौन कठिन है? पर कुमार की यह पहिली विनती तो मानने ही के योग्य है।

राक्षस—मुझे तो जैसी कुमार की आज्ञा माननीय है वैसी ही तुम्हारी भी, इससे मुझे कुमार की आज्ञा मानने में कोई विचार नहीं है।

कंचुकी—(आभूषण पहिराता है) कल्याण हो महाराज! मेरा काम पूरा हुआ।

राक्षस—मैं प्रणाम करता हूँ।

कंचुकी—मुझ को जो आज्ञा हुई थी सो मैंने पूरी की (जाता है)

राक्षस—प्रियम्वदक! देख तो मेरे मिलने को द्वार पर कौन खड़ा है।

प्रियम्वदक—जो आज्ञा (आगे बढ़कर सँपेरे के पास आकर) आप कौन हैं?

सँपेरा—मैं जीर्णविष नामक सँपेरा हूँ और राक्षस मन्त्री के साम्हने मैं साँप खिलाना चाहता हूँ। मेरी यह जीविका है।

प्रियम्वदक—तो ठहरो हम अमात्य से निवेदन करलें (राक्षस के पास जाकर) महाराज! एक सँपेरा है, वह आपको अपना करतब दिखलाया चाहता है।

राक्षस—(बॉईं ऑंख का फड़कना देख कर आप ही आप) हैं आज पहिले ही सॉंप दिखाई पड़े (प्रकाश) प्रियम्बदक! मेरा सॉंप देखने को जी नहीं चाहता सो इसे कुछ देकर बिदा कर।

प्रियम्बदक—जो आज्ञा (सॅंपेरे के पास जाकर) लो, मन्त्री तुम्हारा कौतुक बिना देखे ही तुम्हे यह देते हैं, जाओ।

सँपेरा— मेरी ओर से यह बिनती करो कि मैं केवल सॅंपेरा ही नहीं हूँ किन्तु भाषा का कवि भी हूॅं, इससे जो मन्त्रीजी मेरी कविता मेरे मुख से न सुना चाहें तो यह पत्र ही दे दो पढ़लें (एक पत्र देता है)।

प्रियम्बदक—(पत्र लेकर राक्षस के पास आकर) महाराज! वह सॅंपेरा कहता है कि मैं केवल सॅंपेरा ही नहीं हूँ, भाषा का कवि भी हूॅं। इससे जो मन्त्री जी मेरी कविता मेरे मुख से सुनना न चाहें तो यह पत्र ही दे दो पढ़लें (पत्र देता है)।

राक्षस—(पत्र पढ़ता है)

सकल कुसुम रस पान करि, मधुप रसिक सिरताज।
जो मधु त्यागत ताहि लै, होत सबै जगकाज॥

(आप ही आप) अरे! !—"मैं कुसुमपुर का वृतान्त जानने वाला आपका दूत हूँ" इस दोहे से यह ध्वनि निकलती है। अह! मैं तो कामों से ऐसा घबड़ा रहा हूॅं कि अपने भेजे भेदिया लोगों को भी भूल गया।

अब स्मरण आया, यह तो सँपेरा बना हुआ विराध-गुप्त सुकुमपुर से आया है (प्रकाश) प्रियम्बदक! इस को बुलाओ, यह सुकवि है, मैं भी इस की कविता सुना चाहता हूँ।

प्रियम्बदक—जो आज्ञा (सँपेरे के पास जाकर) चलिए, मन्त्रीजी आपको बुलाते हैं।

सँपेरा—(मन्त्री के सामने जाकर और देख कर आप ही आप) अरे यही मन्त्री राक्षस है ? अहा !—

लै बाम बाहु-लताहि राखत कण्ठ सों खसि खसि परै।
तिमि धरे दच्छिन बाहु काहू गोद में थिचलै गिरै॥
जा बुद्धि के डर होइ संकित नृप हृदय कुच नहीं धरै।
अजहूँ न लक्ष्मी चन्द्रगुप्तहि गाढ़ आलिंगन करै॥

(प्रकाश) मन्त्री की जय हो।

राक्षस—(देख कर) अरे विराध—(संकोच से बात उड़ाकर) प्रियम्बदक ! मैं जब तक सर्पों से अपना जी बहलाता हूँ तब तक सब को लेकर तू बाहर ठहर।

प्रियम्बदक—जो आज्ञा।

(बाहर जाता है)

राक्षस—मित्र विराधगुप्त ! इस आसन पर बैठो।

विराधगुप्त—जो आज्ञा (बैठता है)।

राक्षस—(खेद के सहित निहार कर) हा ! महाराज नन्द के आश्रित लोगों की यह अवस्था ! (रोता है)।

विराधगुप्त—आप कुछ शोच न करें, भगवान् की कृपा से शीघ्र ही वही अवस्था होगी।

राक्षस—मित्र विराधगुप्त ! कहो, कुसुमपुर का वृत्तान्त कहो।

विराधगुप्त—महाराज ! कुसुमपुर का वृत्तान्त बहुत लम्बा चौड़ा है, इससे जहाँ से आज्ञा हो वहाँ से कहूँ।

राक्षस—मित्र ! चन्द्रगुप्त के नगर प्रवेश के पीछे मेरे भेजे हुए विष देने वाले लोगों ने क्या क्या किया यह सुनना चाहता हूँ।

विराधगुप्त—सुनिये—शक, यवन, किरात, काम्बोज, पारस, वाह्लीकादिक देश के चाणक्य के मित्र राजाओं की सहायता से चन्द्रगुप्त और पर्वतेश्वर के दलरूपी समुद्र से कुसुमपुर चारों ओर से घिरा हुआ है।

राक्षस—(कृपाण खींच कर क्रोध से) है! मेरे जीते कौन कुसुमपुर घेर सकता है ? प्रवीरक ! प्रवीरक !

चढ़ौ लै सरै धाइ घेरौ अटा कों।
धरौ द्वार पै कुंजरै ज्यों घटा कों॥
कहौ जोधनै मृत्यु को जीति धावै।
चलै सङ्ग मै छांड़ि कै कीर्ति पावै॥

विराधगुप्त—महाराज ! इतनी शीघ्रता न कीजिये मेरी बात सुन लीजिये।

राक्षस—कौन बात सुनूँ ? अब मैंने जान लिया कि इसी का समय आगया है (शस्त्र छोड़ कर आँख में आँसू भरकर) हा ! देवनन्द ! राक्षस को तुम्हारी कृपा कैसे भूलेगी ?

हे जहँ झुण्ड खड़े गज मेघ के आज्ञा करौ तहाँ राक्षस ! जायकै।
त्यों ये तुरङ्ग अनेकन हैं, तिनहूँ के प्रबन्धहि राखौ बनायकै॥
पैदल ये सब तेरे भरोसे हैं, काज करौ तिन को चित लायकै।
यों कहि एक हमै तुम मानत हे, निज काज हजार बनायकै॥
हाँ फिर ?

विराधगुप्त—तब चारों ओर से कुसुम नगर घेर लिया और नगरवासी बिचारे भीतर ही भीतर घिरेघिरे

घबड़ा गये, उनकी उदासी देखकर सुरङ्ग के मार्ग से सर्वार्थसिद्धि तपोवन मे चला गया, और स्वामी के विरह से आप के सब लोग शिथिल हो गये। तब अपने जय की डौंड़ी सब नगर में शत्रु लोगो ने फिरवा दी, और आपके भेजे हुए लोग सुरंग में इधर उधर छिप गये, और जिस विषकन्या को आपने चन्द्रगुप्त के नाश हेतु भेजा था उससे तपस्वी पर्व्वतेश्वर मारा गया।

राक्षस—अहा मित्र! देखो, कैसा आश्चर्य्य हुआ—

जो विषमयी नृप चन्द्र वध हित नारि राखी लाइ कै।
तासों हत्यो पर्व्वत उलटि चाणक्य बुद्धि उपाइ कै॥
जिमि करन शक्ति अमोघ अरजुन हेतु धरी छिपाइ कै।
पै कृष्ण के मत सो घटोत्कच पै परी घहराइ कै॥

विराधगुप्त—महाराज! समय की सब उलटी गति है।—क्या कीजिएगा?

राक्षस—हाँ! तब क्या हुआ?

विराधगुप्त—तब पिता का वध सुनकर कुमार मलयकेतु नगर से निकल कर चले गए, और पर्वतेश्वर के भाई वैरोधक पर उन लोगों ने अपना विश्वास जमा लिया। तब उस दुष्ट चाणक्य ने चन्द्रगुप्त का प्रवेश मुहूर्त्त प्रसिद्ध करके नगर के सब बढ़ई और लोहारों को बुलाकर एकत्र किया और उनसे कहा कि महाराज के नन्दभवन मे गृह प्रवेश का मुहूर्त्त ज्योतिषियो ने आज ही आधी रात का दिया है, इससे बाहर से भीतर तक सब द्वारों को जाँच लो; तब उससे बढ़ई लोहारो ने कहा कि "महाराज! चन्द्रगुप्त का गृहप्रवेश जानकर दारुवर्म्म

ने प्रथम द्वार तो पहिले ही सोने की तोरनों से शोभित कर रक्खा है, भीतर के द्वारों को हम लोग ठीक करते हैं।" यह सुन कर चाणक्य ने कहा कि बिना कहे ही दारुवर्म्म ने बड़ा काम किया इससे उसको चतुराई का पारितोषिक शीघ्र ही मिलेगा।

राक्षस—(आश्चर्य से) चाणक्य प्रसन्न हो यह कैसी बात है? इससे दारुवर्म्म का यत्न या तो उलटा हो या निष्फल होगा, क्योंकि इसने बुद्धिमोह से या राजभक्ति से बिना समय ही चाणक्य के जी में अनेक सन्देह और विकल्प उत्पन्न कराया। हाँ फिर?

विराधगुप्त—फिर उस दुष्ट चाणक्य ने बुला कर सब को सहेज दिया कि आज आधी रात को प्रवेश होगा, और उसी समय पर्व्वतेश्वर के भाई वैरोधक और चन्द्रगुप्त को एक आसन पर बिठा कर पृथ्वी का आधा आधा भाग कर दिया।

राक्षस—क्यों पर्व्वतेश्वर के भाई वैरोधक को आधा राज मिला, यह पहिले ही उसने सुना दिया?

विराधगुप्त—हाँ, तो इससे क्या हुआ?

राक्षस—(आप ही आप) निश्चय यह ब्राह्मण बड़ा धूर्त है, कि इसने उस सीधे तपस्वी से इधर उधर की चार बातें बनाकर पर्व्वतेश्वर के मारने के शयपत्र निवारण के हेतु यह उपाय सोचा। (प्रकाश) अच्छा कहो—तब?

विराधगुप्त—तब यह तो उसने पहिले ही प्रकाशित कर दिया था कि आज रातको गृहप्रवेश होगा, फिर उसने वैरोधक को अभिषेक कराया और बड़े-बड़े बहुमूल्य स्वच्छ

मोतियों का उसको कवच पहिनाया और अनेक रत्नों से जड़ा सुन्दर मुकुट उसके सिर पर रक्खा और गले में अनेक सुगन्ध के फूलों की माला पहिराई, जिससे वह एक ऐसे बड़े राजा की भाँति हो गया कि जिन लोगों ने उसे सर्वदा देखा है वे भी न पहिचान सकें। फिर उस दुष्ट चाणक्य की आज्ञा से लोगों ने चन्द्रगुप्त की चन्द्रलेखा नाम की हथिनी पर बिठा कर बहुत से मनुष्य साथ कर के बड़ी शीघ्रता से नन्द मन्दिर में उसका प्रवेश कराया। जब वैरोधक मन्दिर मे घुसने लगा तब आपका भेजा दारुवर्म्म बढ़ई उसको चन्द्रगुप्त समझ कर उसके ऊपर गिराने को अपनी कल की बनी तोरन लेकर सावधान हो बैठा। इसके पीछे चन्द्रगुप्त के अनुयायी राजा सब बाहर खड़े रह गए और जिस बर्बर को आपने चन्द्रगुप्त के मारने के हेतु भेजा था वह अपनी सोने की छड़ी की गुप्ती जिस में एक छोटी कृपाण थी लेकर वहाँ खड़ा हो गया।

राक्षस—दोनों ने बे ठिकाने काम किया, हाँ फिर ?

विराधगुप्त—तब उस हथिनी को मार कर बढ़ाया और उसके दौड़ चलने से कल की तोरण का लक्ष, जो चन्द्रगुप्त के धोखे वैरोधक पर किया गया था, चूक गया और वहां बर्बर जो चन्द्रगुप्त का आसरा देखता था, वह विचारा उसी कल की तोरन से मारा गया। जब दारुवर्म्म ने देखा कि लक्ष को चूक गये, अब मारे जायहींगे तो उसने उस कल के लोहे की कील से उस ऊँचे तोरन के स्थान ही पर से चन्द्रगुप्त के धोखे तपस्वी वैरोधक को हथिनी ही पर मार डाला!

राक्षस—हाय ! दोनों बात कैसे दुःख की हुईं चन्द्रगुप्त तो काल से बच गया और दोनों बिचारे बर्बर और वैरोधक मारे गए, (आप ही आप) दैव ने इन दोनों को नहीं मारा हम लोगों को मारा !! (प्रकाश) और वह दारुवर्म्म बढ़ई क्या हुआ ?

विराधगुप्त—उसको वैरोधक के साथ के मनुष्यों ने मार डाला।

राक्षस—हाय ! बड़ा दुःख हुआ ! हाय प्यारे दारुवर्म्म का हम लोगों से वियोग हो गया। अच्छा ! उस वैद्य अभयदत्त ने क्या किया ?

विराधगुप्त—महाराज ! सब कुछ किया।

राक्षस—(हर्ष से) क्या चन्द्रगुप्त मारा गया ?

विराधगुप्त—दैव ने न मरने दिया।

राक्षस—(शोक से) तो क्या फूल कर कहते हो कि सब कुछ किया ?

विराधगुप्त—उसने औषधि मे विष मिला कर चन्द्रगुप्त को दिया, पर चाणक्य ने उसको देख लिया और सोने के बरतन मे रखकर उसका रङ्ग पलटा जान कर चन्द्रगुप्त से कह दिया कि इस औषधि मे विष मिला है, इसको न पीना

राक्षस—अरे वह ब्राह्मण बड़ा ही दुष्ट है। हाँ, तो वह वैद्य क्या हुआ ?

विराधगुप्त—उस वैद्य को वही औषधि पिला कर मार डाला।

राक्षस—(शोक से) हाय हाय ! बड़ा गुणी मारा गया ! भला शायनघर के प्रबन्ध करने वाले प्रमोदक ने क्या किया ?

विराधगुप्त—उसने सब चौका लगाया।

राक्षस—(घबड़ा कर) क्यों ?

विराधगुप्त—उस मूर्ख को जो आपके यहाँ से व्यय को धन मिला सो उसने अपना बड़ा ठाट बाट फैलाया यह देखते ही चाणक्य चौकन्ना हो गया और उससे अनेक प्रश्न किए, जब उसने उन प्रश्नो का उत्तर अण्डबण्ड दिये तो उस पर पूरा सन्देह करके दुष्ट चाणक्य ने उसको बुरी चाल से मार डाला।

राक्षस—हां! क्या दैव ने यहाँ भी उल्टा हमीं लोगो को मारा! भला वह चन्द्रगुप्त का सोते समय मारने के हेतु जो राजभवन मे वीभत्सका दिक वीर सुरङ्ग मे छिपा रक्खे थे उनका क्या हुआ?

विराधगुप्त—महाराज! कुछ न पूछिये।

राक्षस—(घबड़ा कर) क्यो क्यों! क्या चाणक्य ने जान लिया?

विराधगुप्त—नहीं तो क्या?

राक्षस—कैसे?

विराधगुप्त—महाराज! चन्द्रगुप्त के सोने जाने के पहिले ही वह दुष्ट चाणक्य उस घर में गया और उसको चारों ओर देखा तो भीत की एक दरार से चिउँटियाँ चावल के कने लाती है यह देख कर उस दुष्ट ने निश्चय कर लिया कि इस घर के भीतर मनुष्य छिपे हैं; बस यह निश्चय कर उसने उस घर मे आग लगवा दी और धूआँ से घबड़ा कर निकल तो सके ही नहीं, इससे वे वीभत्सकादिक वहीं भीतर ही जल कर राख हो गये।

राक्षस—(सोच से) मित्र! देख चन्द्रगुप्त का भाग्य कि सब के सब मर गये। (चिन्ता सहित) अहा! सखा! देख इस दुष्ट चन्द्रगुप्त का भाग्य !!!

कन्या जो विष की गई, ताहि हतन के काज।
तासों मारयौ पर्व्वतक, जाको आधो राज॥
सबै नसे कलबल सहित, जे पठये बध हेत।
उलटी मेरी नीति सब, मौर्य्यहिं को फल देत॥

विराधगुप्त—महाराज! तब भी उद्योग नहीं छोड़ना चाहिये
प्रारम्भ ही नहि विघ्न के भय अधम जन उद्यम सजैं।
पुनि करहिं तौ कोऊ विघ्न सों डरि मध्य ही मध्यम तजैं॥
धरि लात विघ्न अनेक पै निरभय न उद्यम ते टरैं।
जे पुरुष उत्तम अन्त में ते सिद्ध सब कारज करैं॥

और भी—

का सेसहि नहिं भार पै, धरती देत न डारि।
कहा दिवसमनि नहिं थकत पै नहिं रुकत विचारि॥
सज्जन ताको हित करत, जेहि किये अंगीकार।
यहै नेम सुकृतीन को, निज जिय करहु विचार॥

राक्षस—मित्र! यह क्या तू नहीं जानता कि मैं प्रारब्ध भरोसे नहीं हूँ? हाँ, फिर।

विराधगुप्त—तब से दुष्ट चाणक्य चन्द्रगुप्त की रक्षा में चौकन्ना रहता है और इधर उधर के अनेक उपाय सोचा करता है और पहिचान-पहिचान के नन्द के मित्रों को पकड़ता है।

राक्षस—(घबड़ा कर) हाँ! कहो तो, मित्र उसने किसे किसे पकड़ा है।

विराधगुप्त—सब के पहिले तो जीवसिद्धि क्षपणक को निरादर कर के नगर से निकाल दिया।

राक्षस—(आप ही आप) भला इतने तक तो कुछ चिन्ता नहीं क्योंकि वह जोगी है उसका घर बिना जी न घबड़ायगा। (प्रकाश) मित्र उसपर अपराध क्या ठहराया ?

विराधगुप्त—कि इसी दुष्ट ने राक्षस की भेजी विषकन्या से पर्व्वतेश्वर को मार डाला।

राक्षस—(आप ही आप) वाहरे कौटिल्य वाह ! क्यों न हो।

निज कलंक हम पै धरयौ, हत्यौ अर्द्ध बटवार।
नीति बीज तुव एक ही, फल उपजवत हजार॥

(प्रकाश) हाँ, फिर ?

विराधगुप्त—फिर चन्द्रगुप्त के नाश को इसने दारुवर्म्मादिक नियत किये थे यह दोष लगा कर शकटदास को सूलो दे दी।

राक्षस—(दुःख से) हा मित्र ! शकटदास ! तुम्हारी बड़ी अयोग्य मृत्यु हुई। अथवा स्वामी के हेतु तुम्हारे प्राण गये। इससे कुछ शोच नहीं है, शोच हमी लोगों का है कि स्वामी के मरने पर भी जीना चाहते हैं।

विराधगुप्त—मन्त्री ! ऐसा न सोचिये, आप स्वामी का काम कीजिए।

राक्षस—मित्र।

केवल है यह सोक, जीव लोभ अब लौं बचे।
स्वामि गयो परलोक, पै कृतघ्न इत ही रहे॥

विराधगुप्त—महाराज ! ऐसा नहीं (केवल यह ऊपर के छन्द फिर से पढ़ता है)*।

---

* अर्थात् जो लोग जीव लोभ से बचे हैं वे कृतघ्न हैं आप तो स्वामी के कार्यसाधन को जीते हैं।

राक्षस—मित्र ! कहो और भी सैकड़ों मित्रों का नाश सुनने को ये पापी कान उपस्थित है।

विराधगुप्त—यह सब सुन कर चन्दनदास ने बड़े कष्ट से आपके कुटुम्ब को छिपाया।

राक्षस—मित्र ! उस दुष्ट चाणक्य के तो चन्दनदास ने विरुद्ध ही किया।

विराधगुप्त—तो मित्र का बिगाड़ करना तो अनुचित ही था।

राक्षस—हाँ, फिर क्या हुआ ?

विराधगुप्त—तब चाणक्य ने आपके कुटुम्ब को चन्दनदास से बहुत मांगा पर उसने नहीं दिया, इस पर उस दुष्ट ब्राह्मण ने—

राक्षस—(घबड़ा कर) क्या चन्दनदास को मार डाला ?

विराधगुप्त—नहीं, मारा तो नहीं, पर स्त्री पुत्र धन समेत बाँध कर बन्दीघर में भेज दिया।

राक्षस—तो क्या ऐसा सुखी होकर कहते हो कि बन्धन में भेज दिया ? अरे ! यह कहो कि मन्त्री राक्षस को कुटुम्ब सहित बाँध रक्खा है।

(प्रियम्वदक आता है)

प्रियम्वदक—जय जय महाराज ! बाहर शकटदास खड़े हैं।

राक्षस—(आश्चर्य से) सच ही !

प्रियम्वदक—महाराज—आपके सेवक कभी मिथ्या बोलते हैं।

राक्षस—मित्र विराधगुप्त ! यह क्या ?

विराधगुप्त—महाराज ! होनहार जो बचाया चाहे तो कौन मार सकता है ?

राक्षस—प्रियम्बदक ! अरे जो सच ही कहता है तो उनको झट-पट लाता क्यों नहीं ।

प्रियम्बदक—जो आज्ञा (जाता है)

(सिद्धार्थक के संग शकटदास आता है ।)

शकटदास—देख कर (आप ही आप)

वह सूली गढ़ी जो बड़ी दृढ़ के,
सोई चन्द्र को राज थिरयौं मन तें ।
लपटी वह फाँस की डोर सोई,
मनु श्री लपटी वृषलै मन तें ॥
बजी डौंड़ो निरादर की नृप नन्द के,
सोऊ लख्यो इन आँखन तें ।
नहिं जान परै इतनो हूँ भये,
केहि हेत न प्रान कढ़े तन तें ॥

(राक्षस को देख कर) यह मन्त्री राक्षस बैठे हैं । अहा !

नन्द गये हू नहिं तजत, प्रभु सेवा को स्वाद ।
भूमि बैठि प्रगटत मनहुँ, स्वामिभक्त मरजाद ॥

(पास जाकर) मन्त्री की जय हो ।

राक्षस—(देख कर आनन्द से) मित्र शकटदास ! आओ मुझसे मिल लो, क्योंकि तुम दुष्ट चाणक्य के हाथ से बच के आये हो ।

शकटदास—(मिलता है) ।

राक्षस—(मिल कर) यहाँ बैठो ।

शकटदास—जो आज्ञा (बैठता है) ।

राक्षस—मित्र शकटदास ! कहो तो यह आनन्द की बात कैसे हुई

शकटदास—(सिद्धार्थक को दिखाकर) इस प्यारे सिद्धार्थक ने सूली देने वाले लोगों को हटा कर मुझको बचाया।

राक्षस—(आनन्द से) वाह सिद्धार्थक ! तुम ने काम तो अमूल्य किया है, पर भला ! तब भी यह जो कुछ है सो लो (अपने अङ्ग से आभरण उतार कर देता है)

सिद्धार्थक—(लेकर आप ही आप) चाणक्य के कहने से मैं सब करूँगा (पैर पर गिरके प्रकाश) महाराज यहाँ मैं पहिले-पहल आया हूँ इससे मुझे यहाँ कोई नहीं जानता कि मैं उसके पास इन भूषणों को छोड़ जाऊँ, इससे आप इसी अँगूठी से इस पर मोहर करके इसको अपने ही पास रक्खें, मुझे जब काम होगा ले जाऊँगा।

राक्षस—क्या हुआ। अच्छा शकटदास ! जो यह कहता है वही करो।

शकटदास—जो आज्ञा (मोहर पर राक्षस का नाम देख कर धीरे से) मित्र ! यह तो तुम्हारे नाम की मोहर है।

राक्षस—(देख कर बड़े शोच से आप ही आप) हाय हाय इसको तो जब मैं नगर से निकला था तो ब्राह्मणी ने मेरे स्मरणार्थ ले लिया था, वह इसके हाथ कैसे लगी ? (प्रकाश) सिद्धार्थक ! तुमने यह कैसे पाई ?

सिद्धार्थक—महाराज ! कुसुमपुर में जो चन्दनदास जौहरी हैं उनके द्वार पर पड़ी पाई।

राक्षस—तो ठीक है।

सिद्धार्थक—महाराज ! ठीक क्या है ?

राक्षस—यही कि ऐसे धनिकों के घर बिना यह वस्तु और कहाँ मिले ?

शकटदास—मित्र ! यह मंत्री जी के नाम की मोहर है इससे तुम इसको मंत्री को दे दो, तो इसके बदले तुम्हें बहुत पुरस्कार मिलेगा।

सिद्धार्थक–महाराज ! मेरे ऐसे भाग्य कहाँ कि आप इसे लें।

(मोहर देता है)

राक्षस—मित्र शकटदास ! इसी मुद्रा से सब काम किया करो।

शकटदास—जो आज्ञा।

सिद्धार्थक–महाराज मैं कुछ विनती करूँ ?

राक्षस—हाँ हाँ ! अवश्य करो।

सिद्धार्थक–यह तो आप जानते ही हैं कि उस दुष्ट चाणक्य की बुराई करके फिर मैं पटने में घुस नहीं सकता इससे कुछ दिन आप ही के चरणों की सेवा किया चाहता हूँ।

राक्षस–बहुत अच्छी बात है, हम लोग तो ऐसा चाहते ही थे, अच्छा है, यहीं रहो।

सिद्धार्थक—(हाथ जोड़ कर) बड़ी कृपा हुई।

राक्षस—मित्र शकटदास ! ले जाओ, इसको उतारो और सब भोजनादिक का ठीक करो।

शकटदास—जो आज्ञा।

(सिद्धार्थक को लेकर जाता है)

राक्षस मित्र विराधगुप्त ! अब तुम कुसुमपुर का वृत्तान्त जो छूट गया था सो कहो ! वहाँ के निवासियों को मेरी बातें अच्छी लगती हैं कि नहीं ?

विराधगुप्त—बहुत अच्छी लगती हैं, वरन् वे सब तो आप ही के अनुयायी है।

राक्षस–ऐसा क्यों ?

विराधगुप्त—इसका कारण यह है कि मलयकेतु के निकलने के

पीछे चाणक्य को चन्द्रगुप्त ने कुछ चिढ़ा दिया और चाणक्य ने भी उसकी बात न सह कर चन्द्रगुप्त की आज्ञा भंग करके उसको दुःखी कर रक्खा है, यह मैं भली भाँति जानता हूँ।

राक्षस—(हर्ष से) मित्र विराधगुप्त ! तो तुम इसी सपेरे के भेस से फिर कुसुमपुर जाओ और वहाँ मेरा मित्र रतनकलस नामक कवि है उससे कह दो कि चाणक्य के आज्ञा भँगादिकों के कवित्त बना बनाकर चन्द्रगुप्त को बढ़ावा देता रहे और जो कुछ काम हो जाय वह करभक से कहला भेजे।

विराधगुप्त—जो आज्ञा (जाता है)

(प्रियम्वदक आता है)

प्रियम्बदक—जय हो महाराज ! शकटदास कहते हैं कि यह तीन आभरण बिकते है इन्हें आप देखें।

राक्षस—(देख कर) अहा यह तो बड़े मूल्य के गहने हैं, अच्छा शकटदास से कहदो कि दाम चुका कर ले लें।

प्रियम्बदक—जो आज्ञा (जाता है)।

राक्षस—तो अब हम भी चल कर करभक को कुसुमपुर भेजें (उठता है)। अहा ! क्या उस मृतक चाणक्य से चन्द्रगुप्त से बिगाड़ हो जायगा, क्यों नहीं ? क्योंकि सब कामो को सिद्ध ही देखता हूँ।

चन्द्रगुप्त निज तेज बल, करत सबन को राज।
तेहि समझत चाणक्य यह, मेरो दियो समाज॥
अपनी २ करि चुके, काज रह्यो कछु जौन।
अब जो आपुस में लड़ें, तो बड़ अचरज कौन॥

(जाता है)

तृतीय अङ्क

(स्थान—राजभवन की अटारी)

[कंचुकी आता है।]

कंचुकी—जे रूप आदिक विषय जो राखे हिये बहु लोभ सों।
सो मिटे इन्द्रीगन सहित ह्वै सिथिल अतिही छोभ सों॥
मानत कह्यौ कोउ नाहिं, सब अँग अँग ढीले ह्वै गए।
तौहू न तृस्ने ! क्यौं तजत तू मोहि बूढ़ोहू भए॥

(आकाश की ओर देख कर) अरे ! अरे ! सुगाँगप्रासाद के लोगो ! सुनो। महाराज चन्द्रगुप्त ने तुम लोगो को यह आज्ञा दी है कि कौमुदी-महोत्सव के होने से परम शोभित कुसुमपुर को मैं देखना चाहता हूँ, इससे उस अटारी को बिछौने इत्यादि से सजा रक्खो देर क्यों करते हो ? (आकाश की ओर देख कर) क्या कहा ? क्या महाराज चन्द्रगुप्त नहीं जानते कि कौमुदी महोत्सव अब की न होगा ? दुर दईमारो ! क्या मरने को लगे हो ? शीघ्रता करो।

सवैया।

बहु फूल की माल लपेटके खंभन धूप सुगंध सों ताहि धुपाइये।
तापै चहूँ दिस चंद छपा से सुसोभित चौंर घने लटकाइये॥
भार सो चारु सिंहासन के मुरछा में धरा परी धेनु सी पाइये।
छींटि कै तापै गुलाब मिल्यौ जल चन्दन ता कहँ जाइ जगाइये॥

(आकाश की ओर देख कर) क्या कहते हो—कि हम लोग अपने काम में लग रहे है? अच्छा अच्छा झटपट सब सिद्ध करो, देखो! वह महाराज चन्द्रगुप्त आ पहुँचे।

बहु दिन श्रम करि नन्द नृप, बह्यो राज धुर जौन।
बालापन ही मे लियौ, चन्द सीस निज तौन॥
डिगत न नेकहु विषम पथ, दृढ़ प्रतिज्ञ दृढ़ गात।
गिरन चहत सँभरत बहुरि, नेकु न जिय घबरात॥

(नेपथ्य में) इधर महाराज इधर।

(राजा और प्रतिहारी आते है)

राजा—(आप ही आप) राज उसी का नाम है जिसमें अपनी आज्ञा चले दूसरे के भरोसे राज करना भी एक बोझा ढोना है। क्योंकि—

जो दूजे कौ हित करै, तौ खोवै निज काज।
जौ खोयौ निज काज तौ, कौन बात कौ राज॥
दूजे ही कौ हित करै, तौ वह परवस मूढ़।
कठपुतरी सो स्वाद कछु, पावै कबहुँ न कूढ़॥

और राज्य पाकर भी इस दुष्ट राजलक्ष्मी को सम्हालना बहुत कठिन है। क्योंकि—

क्रूर सदा भाखत पियहि, चञ्चल सहज सुभाव।
नर गुन-औगुन नहिं लखति, सज्जन खल सम भाव॥
डरत सूर सो, भीरु कहँ गिनत न कछु रति* हीन।
बारनारि अरु लच्छमी, कहौ कौन बस कीन॥

यद्यपि गुरु ने कहा है कि तू झूठी कलह करके स्वतन्त्र हो कर अपना प्रबन्ध आप कर ले, पर यह तो बड़ा पाप सा है।

* रति का यहाँ प्रीति अर्थ है।

अथवा गुरूजी के उपदेश पर चलने से तो हम लोग सदा ही स्वतन्त्र है।

जब लौ बिगरै काज नहिं तब लौं न गुरु कछु तेहि कहै।
पै शिष्य जाइ कुराह तौ गुरु सीस अंकुस ह्वै रहै॥
तासौं सदा गुरुवाक्य बस हम नित्य पर आधीन हैं।
निर्लोभ गुरु से सन्त जन ही जगत मे स्वाधीन हैं॥

(प्रकाश) अजी वैहीनर! "सुगाँगप्रासाद" का मार्ग दिखाओ

कंचुकी—इधर आइये महाराज इधर!

राजा—(आगे बढ़ता है)

कंचुकी—महाराज! सुगाँगप्रासाद की यही सीढ़ी है।

राजा—ऊपर चढ़ कर अहा! शरद ऋतु की शोभा से सब दिशायें कैसी सुन्दर हो रही हैं?

सरद विमल ऋतु सोहई, निरमल नील अकाश।
निसानाथ पूरन उदित, सोलह कला प्रकाश॥
चारु चमेली बन रहीं, महमह महँकि सुबास।
नदी तीर फूले लखौ, सेत सेत बहु कास॥
कमल कुमोदिनि सरन में, फूलेसोभा देत।
भौंर वृन्द जापै लखौ, गूँजि गूँजि रस लेत॥
बसन चाँदनी चन्दमुख, उडुगन मोती माल।
कास फूल मधु हास यह, सरद किधौं नव बाल॥

(चारों ओर देखकर) कंचुकी! यह क्या? नगर में "चन्द्रिकोत्सव" कहीं नहीं मालूम पड़ता; क्या तूने सब लोगों से ताकीद करके नहीं कहा था कि उत्सव होय?

कंचुकी—महाराज! सब से ताकीद कर दी थी।

राजा—तो फिर क्यों नहीं हुआ ? क्या लोगों ने हमारी आज्ञा नहीं मानी।

कंचुकी—(कान पर हाथ रख कर) राम राम ! भला नगर क्या इस पृथ्वी में ऐसा कौन है जो आपकी आज्ञा न माने ?

राजा—तो फिर चन्द्रिकोत्सव क्यों नहीं हुआ ? देख न—

गज रथ बाजि सजे नहीं, बँधी न बन्दनबार।
तने बितान न कहुँ नगर, रञ्जित कहूँ न द्वार॥
नर नारी डोलत न कहुँ, फूल माल गल डार।
नृत्य बाद धुनि गीत नहिं सुनियत स्रवन मँझार॥

कंचुकी—महाराज ! ठीक है—ऐसा ही है।

राजा—क्यों ऐसा ही है ?

कंचुकी—महाराज यों ही है।

राजा—स्पष्ट क्यों नहीं कहता ?

कंचुकी—महाराज ! चन्द्रिकोत्सव बन्द किया गया है।

राजा—(क्रोध से) किसने बन्द किया है ?

कंचुकी—(हाथ जोड़ कर) महाराज ! यह मैं नहीं कह सकता।

राजा—कहीं आर्य्य चाणक्य ने तो नहीं बन्द किया ?

कंचुकी—महाराज ! और किसको अपने प्राणों से शत्रुता करनी थी ?

राजा—(अत्यन्त क्रोध से) अच्छा अब हम बैठेंगे।

कंचुकी—महाराज ! यह सिंहासन है, विराजिए।

राजा—(बैठ कर क्रोध से) अच्छा कंचुकी ! आर्य्य चाणक्य से कहो कि "महाराज आपको देखा चाहते हैं।"

कंचुकी—जो आज्ञा (बाहर जाता है)

(एक ओर परदा उठता है और चाणक्य बैठा हुआ दिखाई पड़ता है ।)

चाणक्य—(आप ही आप) दुष्ट राक्षस हमारी बराबरी करता है, वह जानता है कि—

जिमि हम नृप अपमान सों, महा क्रोध उर धारि ।
करी प्रतिज्ञा नन्द नृप, नासन की निरधारि ॥
सो नृप नन्दहि पुत्र सह, नासि करी हम पूर्न ।
चन्द्रगुप्त राजा कियो, करि राक्षस मद चूर्न ॥
तिमि सोऊ मोहि नीति बल, छलन चहत हति चन्द ।
पै मो आछत यह जतन, वृथा तासु अति मन्द ॥

(ऊपर देख कर क्रोध से) अरे राक्षस ! छोड़ छोड़ यह व्यर्थ का श्रम; देख—

जिमि नृप नन्दहि मारि कै, वृषलहि दीनों राज ।
आय नगर चाणक्य किय, दुष्ट सर्प सो काज ॥
तिमि सोऊ नृप चन्द को, चाहत करन बिगार ।
निज लघु मति लांघ्यौ चहत, मो बल बुद्धि पहार ॥

(आकाश की ओर देख कर) अरे राक्षस ! मेरा पीछा छोड़ क्योंकि—

राज काज मन्त्री चतुर, करत बिना अभिमान ।
जैसौ तुव नृप नन्द हो, चन्द्र न तौन समान ॥
तुम कछु नहिं चाणक्य जो, साधौ कठिनहु काज ।
तासों हम सौ बैर करि, नहिं सरिहै तुव राज ॥

अथवा इसमें तो मुझे कुछ सोचना ही न चाहिए । क्योंकि—

चाणक्य—(उठ कर) कंचुकी ! सुगाँगप्रासाद का मार्ग बता।

कंचुकी—इधर महाराज (दोनों घूमते हैं)।

कंचुकी—महाराज ! यह सुगाँगप्रासाद की सीढ़ियाँ हैं, चढ़ें।

(दोनों सुगाँगप्रासाद पर चढ़ते हैं और चाणक्य के घर का परदा गिरके छिप जाता है।)

चाणक्य—(चढ़ कर और चन्द्रगुप्त को देख कर प्रसन्नता से आप ही आप) अहा ! वृषल सिंहासन पर बैठा है—

हीन नन्द सो रहित नृप, चन्द्र करत जेहि भोग।
परम होत सन्तोष लखि, आसन राजा जोग॥

(पास जाकर) जय हो वृषल की !

चन्द्रगुप्त—(उठ कर और पैरों पर गिर कर) आर्य्य ! चन्द्रगुप्त दण्डवत् करता है।

चाणक्य—(हाथ पकड़ कर उठा कर) उठो बेटा ! उठो।

जहँ लौं हिमालय के सिखर सुरधुनी-कन सीतल रहैं।
जहँलौं बिविध मनिखण्ड मंडित समुद्र दक्खिन दिस बहैं॥
तहँ लौं सबै नृप आइ भय सों तोहि सीस झुकावहीं।
तिनके मुकुट-मनि रँगे तुव पद निरखि हम सुख पावहीं॥

चन्द्रगुप्त—आर्य्य ! आपकी कृपा से ऐसा ही हो रहा है। बैठिए।

(दोनो यथा स्थान बैठते हैं)

चाणक्य—वृषल ! कहो मुझे क्यों बुलाया है ?

चन्द्रगुप्त—आर्य के दर्शन से कृतार्थ होने को।

चाणक्य—(हँस कर) भला, बहुत शिष्टाचार हुआ अब बताओ क्यों बुलाया है ? क्योंकि राजा लोग किसी को बेकाम नहीं बुलाते।

चन्द्रगुप्त—आर्य्य ! आपने कौमुदी-महोत्सव के न होने में क्या फल सोचा है ?

चाणक्य—(हँस कर) तो यही उलहना देने को बुलाया है न ?

चन्द्रगुप्त—उलहना देने को कभी नहीं ।

चाणक्य—तो क्यों ?

चन्द्रगुप्त—पूछने को ।

चाणक्य—जब पूछना ही है तब तुमको इससे क्या ? शिष्य को सर्वदा गुरु की रुचि पर चलना चाहिए ।

चन्द्रगुप्त - इसमें कोई सन्देह नहीं, पर आपकी रुचि बिना प्रयोजन नहीं प्रवृत्त होती, इससे पूछा ।

चाणक्य—ठीक है, तुमने मेरा आशय जान लिया. बिना प्रयोजन के चाणक्य की रुचि किसी ओर कभी फिरती ही नहीं

चन्द्रगुप्त इसीसे तो सुने बिना मेरा जी अकुलाता है ।

चाणक्य—सुनो, अर्थशास्त्रकारों ने तीन प्रकार के राज्य लिखे हैं—एक राजा के भरोसे, दूसरा मन्त्री के भरोसे, तीसरा राजा और मन्त्री दोनों के भरोसे, सो तुम्हारा राज तो केवल सचिव के भरोसे है, फिर इन बातों के पूछने से क्या ? व्यर्थ मुँह दुखाना है, यह सब हम लोगों के भरोसे है, हम लोग जाने ।

(राजा क्रोध से मुँह फेर लेता है)

(नेपथ्य में दो वैतालिक गाते हैं)

प्रथम वै०—(राग विहाग) अहो यह सरद सम्भु है आई ।
कॉस फूल फूले चहुँ दिसि ते सोई मनु भस्म लगाई ॥

चन्द उदित सोइ सीस-अभूषन सोभा लगति सुहाई।
तासों रञ्जित घनपटली सोइ मनु गज खाल बनाई॥
फूले कुसुम मुण्ड माला सोइ सोहत अति धवलाई।
राजहँस सोभा सोइ मानों हास विभव दरसाई॥
अहो यह सरद सम्भु बनि आई।

और भी

(राग कलिङ्गड़ा) हरौ हरि नयन तुम्हारी बाधा।
सरदागम लखि सेस अङ्क तें जगे जगत सुभ साधा॥
कछु कछु खुले मुँदे कछु सोभित आलस भरि अनियारे।
अरुन कमल से मद के माते थिर भये जदपि ढरारे॥
सेस-सीस-मनिचमक चकौंधन तनिकहुँ नहि सकुचाहीं।
नींद भरे श्रम जगे चुभत जे नित कमला उर माहीं॥
हरौ हरि नैन तुम्हारी बाधा।

दूसरा वै०—(कड़खे की चाल में।)
अहो, जिनको बिधि सब जीवसों,बढ़ि दीनो जगकाज।
अरे, दान सलिल बारेसदा, जे जीतहिं गजराज॥
अहो,झुक्यौ न जिनको मान ते,नृपवर जग सिरताज।
अरे, सहहिं न आज्ञा भङ्ग जिमि दन्तपात मृगराज॥

और भी

अरे, केवल बहु गहिनौ पहिर, राजा होइ न कोय।
अहो, जाको नहिं आज्ञा टरै, सो नृप तुम सम होय॥

चाणक्य—(सुन कर आप ही आप) भला पहिले ने तो देवता रूप शरद के वर्णन में आशीर्वाद किया, पर इस दूसरे ने क्या कहा ? (कुछ सोच कर) अरे जाना, यह सब राक्षस की करतूत है। अरे दुष्ट राक्षस ! क्या तू नहीं जानता कि अभी चाणक्य सो नहीं गया है ?

चन्द्रगुप्त—अजी वैहीरा ! इन दोनों गाने वालों को लाख लाख मोहर दिलवा दो

वैहीनर—जो आज्ञा महाराज (उठ कर जाना चाहता है।)

चाणक्य—वैहीनर, ठहर अभी मत जा। वृषल यह अर्थ कुपात्र को इतना क्यों देते हो।

चन्द्रगुप्त—आप मुझे सब बातों में योंही रोक दिया करते हैं, तब यह मेरा राज क्या है वरन उलटा बन्धन है।

चाणक्य—वृषल ! जो राजा आप असमर्थ होते हैं उनमें इतना ही तो दोष है, इससे जो ऐसी इच्छा हो तो तुम अपने राजा का प्रबन्ध आप कर लो।

चन्द्रगुप्त—बहुत अच्छा, आज से मैंने सब काम सम्हाला।

चाणक्य—इससे अच्छी और क्या बात है, तो मैं भी अधिकार पर सावधान हूँ।

चन्द्रगुप्त—जब यही है तो पहिले मैं पूछता हूँ कि कौमुदी-महोत्सव का निषेध क्यों किया गया ?

चाणक्य—मैं भी यही पूछता हूँ कि उसके होने का प्रयोजन क्या था ?

चन्द्रगुप्त—पहिले तो मेरी आज्ञा का पालन।

चाणक्य—मैंने भी आपकी आज्ञा के अपालन के हेतु ही कौमुदीमहोत्सव का प्रतिषेध किया।

क्योंकि—

आइ चारहू सिन्धु के, छोरहु के भूपाल।
जो सासन सिर पै धरैं जिमि फूलन की माल॥
तेहि हम जौ कछु टारहीं, सोउ तुव हित उपदेस।
जासों तुमरो विनय गुन जग में बढ़ै नरेस॥

चन्द्रगुप्त—और जो दूसरा प्रयोजन है वह भी सुनूँ।

चाणक्य—वह भी कहता हूँ।

चन्द्रगुप्त—कहिये।

चाणक्य—शोणोत्तरे! अचलदत्त कायस्थ से कहो कि तुम्हारे पास जो भद्रभट इत्यादिकों का लेख पत्र है वह माँगा है।

प्र०—जो आज्ञा (बाहर से पत्र लाकर देता है)

चाणक्य—वृषल! सुनो!

चन्द्रगुप्त—मैं उधर ही कान लगाये हूँ।

चाणक्य—(पढ़ता है) स्वस्ति परम प्रद्धि नाम महाराज श्री चन्द्रगुप्त देव के साथी जो अब उनको छोड़ कर कुमार मलयकेतु के आश्रित हुए हैं उनका यह प्रतिज्ञापत्र है। पहिला गजाध्यक्ष, भद्रभट, अश्वाध्यक्ष, पुरुषदत्त, महाप्रतिहार चन्द्रभानु का भानजा हिंगुरात, महाराज के नातेदार महाराज बलगुप्त महाराज के लड़कपन का सेवक राजसेन, सेनापति सिंहबलदत्त का छोटा भाई भागुरायण, मालव के राजा का पुत्र रोहिताक्ष और क्षत्रियों में सबसे प्रधान विजयवर्मा (आप ही आप) ये हम सब लोग यहाँ महाराज का काम सावधनी से साधते हैं (प्रकाश) यही इस पत्र में लिखा है। सुना?

चन्द्रगुप्त—आर्य्य! मैं इन सबों के उदास होने का कारण सुनना चाहता हूँ।

चाणक्य—वृषल! सुनो—वह जो गजाध्यक्ष अश्वाध्यक्ष थे वह रात दिन मद्य, स्त्री और जुआ में डूब कर अपने

काम से निरे बेसुध रहते थे इससे मैंने उनसे अधि-कार लेकर केवल निर्वाह के योग्य जीविका कर दी थी, इससे उदास होकर कुमार मलयकेतु के पास चले गये और वहाँ अपना २ कार्य्य सुना कर फिर उसी पद पर नियुक्त हुए हैं और हिंगुरात और बल-गुप्त ऐसे लालची हैं कि कितना भी दिया पर अन्त में मारे लालच के कुमार मलयकेतु के पास इस लोभ से जा रहे हैं कि यहीं बहुत मिलेगा, और जो आपका लड़पन का सेवक राजसेन था उसने आपकी थोड़ी ही कृपा से हाथी घोड़ा घर और धन सब पाया; पर इस भय से भाग कर मलयकेतु के पास चला गया कि यह सब छिन न जाय, और वह जो सिंहबलदत्त सेनापति का छोटा भाई भागुरायण है उससे पर्वतक से बड़ी प्रीति थी सो उसने कुमार मलयकेतु से यह कहा कि "जैसे विश्वासघात करके चाणक्य ने तुम्हारे पिता को मार डाला वैसे ही तुम्हें भी मार डालेगा इससे यहाँ से भाग चलो" एसे बहका कर कुमार मलयकेतु को भगा दिया और जब आपके बैरी चन्दनदासादिकों को दण्ड हुआ तब मारे डर के मलयकेतु के पास जा रहा, उसने भी यह समझ कर कि इसने मेरे प्राण बचाये और मेरे पिता का परि-चित भी है उसको कृतज्ञता से अपना अन्तरङ्गी मंत्री बनाया है, और वह जो रोहिताक्ष और विजयवर्मा थे वह ऐसे अभिमानी थे कि जब आप उनके और नाते-दारों का आदर करते थे तो वह कुढ़ते थे इसी से वे भी मलयकेतु के पास चले गये, बस यही उन लोगों की उदासी का कारण है।

चन्द्रगुप्त—आर्य्य ! जब इन सबके भागने का उद्यम जानते ही थे तो क्यों न रोक रक्खा ?

चाणक्य—ऐसा कर नहीं सके।

चन्द्रगुप्त—क्या आप इसमें असमर्थ हो गये वा कुछ उसमें भी प्रयोजन था ?

चाणक्य—असमर्थ कैसे हो सकते हैं ? उसमें भी कुछ प्रयोजन ही था।

चन्द्रगुप्त—आर्य्य ! वह प्रयोजन मैं सुना चाहता हूँ।

चाणक्य—सुनो और भूल मत जाओ।

चन्द्रगुप्त—आर्य्य ! मैं सुनता ही हूँ, भूलूँगा भी नहीं, कहिये।

चाणक्य—अब जो लोग उदास हो गए हैं या बिगड़ गए हैं उन के दो ही उपाय हैं, या तो फिर से उन पर अनुग्रह करें या उनको दण्ड दें और भद्रभट, पुरुषदत्त से जो अधिकार ले लिया गया है तो अब उन पर अनुग्रह यही है कि फिर उनको उनका अधिकार दिया जाय और यह हो नहीं सकता, क्योंकि उन को मृगया, मद्यपानादिक का जो व्यसन है इससे इस योग्य नहीं हैं कि हाथी घोड़ों को सम्हालें और सब सेना की जड़ हाथी घोड़े ही हैं वैसे ही हिंगुरात, बलगुप्त को कौन प्रसन्न कर सकता है क्योंकि उनको सब राज्य पाने से भी सन्तोष न होगा, और राजसेन भागुरायण तो धन और प्राण के डर से भागे हैं ये तो प्रसन्न होही नहीं सकते, और रोहिताक्ष विजयवर्मा का तो कुछ पूछना ही नहीं है, क्योंकि वे तो और नातेदारों के मान से जलते हैं और उनका

कितना भी मान करो उन्हें थोड़ा ही दिखलाता है तो इसका क्या उपाय है। यह तो अनुग्रह का वर्णन हुआ, अब दण्ड का सुनिये, कि यदि हम इन सबों को प्रधान पद पाकर के जो बहुत दिनों से नन्दकुल के सर्वदा शुभाकाँक्षी और साथी रहे दण्ड दे कर दुखी करें तो नन्दकुल के साथियों का हम पर से विश्वास उठ जाय इस से छोड़ ही देना योग्य समझा सो इन्हीं सब हमारे भृत्यों के पक्षपाती बन कर राक्षस के उपदेश से म्लेच्छराज की बड़ी सहायता पाकर और अपने पिता के वध से क्रोधित हो कर पर्वतक का पुत्र कुमार मलयकेतु हम लोगों से लड़ने को उद्यत हो रहा है, सो यह लड़ाई के उद्योग का समय है उत्सव का समय नहीं, इससे गढ़ के संस्कार के समय कौमुदी-महोत्सव क्या होगा ? यही सोच कर उसका प्रतिषेध कर दिया।

चन्द्रगुप्त—आर्य्य ! मुझे अभी इसमें बहुत कुछ पूछना है।

चाणक्य—भली भाँति पूछो, क्योंकि मुझे भी बहुत कुछ कहना है।

चन्द्रगुप्त—यह पूछता हूँ—

चाणक्य—हाँ ! मैं भी कहता हूँ।

चन्द्रगुप्त—यह कि हम लोगो के सब अनर्थों की जड़ मलयकेतु है उसे आप ने भागतो समय क्यों नहीं पकड़ा ?

चाणक्य—वृषल ! मलयकेतु के भागने के समय भी दोही उपाय थे या तो मेल करते या दण्ड देते, जो मेल करते तो आधा राज देना पड़ता और जो दण्ड देते तो फिर यह हम लोगों की कृतघ्नता सब पर प्रसिद्ध हो जाती कि

इन्हीं लोगों ने पर्वतक को भी मरवा डाला और जो आधा राज देकर अब मेल कर लें तो भी उस बिचारे पर्वतक के मारने का पाप हाथ लगे। इससे मलय-केतु को भागते समय छोड़ दिया।

चन्द्रगुप्त—और भला राक्षस इसी नगर में रहता था उसका भी आपने कुछ न किया, इसका क्या उत्तर है?

चाणक्य—सुनो, राक्षस अपने स्वामी की स्थिर भक्ति से और यहाँ के बहुत दिन के रहने से यहाँ के लोगों का और नन्द के सब साथियों का विश्वास-पात्र हो रहा है और उसका स्वभाव सब लोग जान गये हैं और उसमें बुद्धि और पौरुष भी है वैसे ही उसके सहायक भी हैं और कोषबल भी है, इससे जो वह यहाँ रहे तो भीतर के सब लोगों को फोड़ कर उपद्रव करे और जो यहाँ से दूर रहे तो वह ऊपरी जोड़ तोड़ लगावे पर उनके मिटाने में इतनी कठिनाई न हो इससे उसके जाने के समय उपेक्षा कर दी गई।

चन्द्रगुप्त—तो जब वह यहाँ था तभी उसको वश में क्यों नहीं कर लिया?

चाणक्य—वश क्या करलें अनेक उपायों से तो वह छाती में गढ़े काँटे की भाँति निकाल कर दूर किया गया है। उसे दूर करने में और कुछ प्रयोजन ही था।

चन्द्रगुप्त—तो बल से क्यों नहीं पकड़ रक्खा?

चाणक्य—वह राक्षस ऐसा नहीं है, पर जो बल किया जाय तो या तो वह आप मारा जाय या तुम्हारा नाश करदे; और—

हम खोवैं इक महत नर जो वह पावे नाश।
जो वह नासै सैन तुव तौहू जिय अति त्रास॥
तासों छलबल करि बहुत आपन बल करि वाहि।
जिमि गज पकरें सुघर तिमि बांधेंगे हम ताहि॥

चन्द्रगुप्त—मैं आपकी बात तो नहीं काट सकता, पर इससे तो मन्त्री राक्षस ही बढ़ चढ़ के जान पड़ता है।

चाणक्य—(क्रोध से) 'आप नहीं' इतना क्यों छोड़ दिया? ऐसा कभी नहीं है। उसने क्या किया है कहो तो?

चन्द्रगुप्त—जो आप न जानते हों तो सुनिये कि वह महात्मा—

जदपि आपु जीती पुरी तदपि धारि कुसलात।
जब लौं जित चाह्यौ रह्यौ धारि सीस पै लात॥
डौंड़ी फेरन के समय निज बल जय प्रगटाय।
मेरे दल के लोग को दीनों तुरत हराय॥
मोहे परिजन रीत सों जाके सब बिनु त्रास।
जो मोपै निज लोकहू आनहिं नहिं विश्वास॥

चाणक्य—(हँस कर) वृषल! राक्षस ने यह सब किया?

चन्द्रगुप्त—हाँ हाँ! अमात्य राक्षस ने यह सब किया।

चाणक्य—तो हमने जाना जिस तरह नन्द का नाश करके तुम राजा हुए वैसे ही अब मलयकेतु राजा होगा।

चन्द्रगुप्त—आर्य्य! यह उपालम्भ आपको नहीं शोभा देता करने वाला सब दैव है।

चाणक्य—रे कृतघ्न!

अतिहि क्रोध करि खोलि कै, सिखा प्रतिज्ञा कीन।
सो सब देखत भुव करी, नव नृप नन्द विहीन॥

घिरी स्वान अरु गीध सों भय उपजावनिहारि।
जारि नन्दहू नहिं भई, सान्त मसान दवारि॥

चन्द्रगुप्त—यह सब किसी दूसरे ने किया।

चाणक्य—किस ने ?

चन्द्रगुप्त—नन्दकुल के द्वेषी दैव ने।

चाणक्य—दैव तो मूर्ख लोग मानते हैं।

चन्द्रगुप्त—और विद्वान लोग भी यद्वा तद्वा करते हैं।

चाणक्य—(क्रोध नाट्य करके) अरे वृषल ! क्या नौकरों की तरह मुझ पर आज्ञा चलाता है ?

खुली सिखाहू बाँधिवे चञ्चल भे पुनि हाथ।
(क्रोध से पैर पृथ्वी पर पटक कर)
घोर प्रतिज्ञा पुनि चरन करन चहत कर साथ॥
नन्द नसे सो निरुज ह्वै तू फूल्यौ गरवाय।
सो अभिमान मिटाइहौं तुरतहि तोहि गिराय॥

चन्द्रगुप्त—(घबडा कर) अरे ! क्या आर्य्य को सचमुच क्रोध आ गया !

फर फर फरकत अधरपुट भए नयन जुग लाल।
चढ़ीजाति भौंहैं कुटिल स्वाँस तजत जिमि ब्याल॥
मनहुँ अचानक रुद्रदृग खुल्यौ त्रितिय दिखरात।
(आवेग सहित)
धरनी धार्‌यौ बिनु धँसे हा हा किमि पदधात॥

चाणक्य—(नकली क्रोध रोक कर) तो वृषल ! इस कोरी बकवाद से क्या लाभ है ? जो राक्षस चतुर है तो यह शस्त्र उसी को दे। (शस्त्र फेंक कर और उठ कर) आप

ही आप ह ह ह ! राक्षस ! यही तुमने चाणक्य को जीतने का उपाय किया ।

तुम जान्यौ चाणक्य सो, नृप चन्दहि लरवाय ।
सहजहि लैहैं राज हम, निज बल बुद्धि उपाय ॥
सो हम तुमहीं कहँ छलन, कियो क्रोध परकास ।
तुमरोई करिहै उलटि, यह तुव भेद बिनास ॥

(क्रोध प्रकट करता हुआ चला जाता है)

चन्द्रगुप्त—आर्य्य वैहीनर ! "चाणक्य का अनादर करके आज से हम सब काम काज आप ही सम्हालेंगे," यह लोगो से कह दो ।

कंचुकी—(आप ही आप) अरे । आज महाराज ने चाणक्य के पहले आर्य्य शब्द नहीं कहा ! क्यो ? क्या सचमुच अधिकार छीन लिया ? वा इसमे महाराज का क्या दोष है !

सचिव दोष सों होत हैं, नृपहु बुरे तत्काल ।
हाथीवान प्रमाद सो, गज कहवावत व्याल ॥

चन्द्रगुप्त—क्यो जी ? क्या सोच रहे हो ?

कंचुकी—यही महाराज को महाराज शब्द अब यथार्थ शोभा देता है ।

चन्द्रगुप्त—(आप ही आप) इन्ही लोगों के धोखा खाने से आर्य्य का काम होगा । (प्रगट) शोणोत्तरे ! इस सूखे कलह से हमारा सिर दुखने लगा, इससे शयनगृह का मार्ग दिखलाओ ।

प्रतिहारी—इधर आवें महाराज इधर आवें।

चन्द्रगुप्त—(उठ कर चलता हुआ आप ही आप)

गुरु आयसु छल सों कलह, करिहू जीय डराय।
किमि नर गुरुजनसो लरहि, यहै सोच जिय हाय॥

(सब जाते हैं—जवनिका गिरती है)

तृतीय अङ्क समाप्त हुआ।

चतुर्थ अङ्क

स्थान—मन्त्री राक्षस के घर के बाहर का प्रान्त

(करभक घबड़ाया हुआ आता है)

करभक—अहाहा हा ! अहाहा हा !

अतिसय दुरगम ठाम में, सत जोजन सों दूर ।
कौन जात है धाइ बिनु, प्रभु निदेस भरपूर ॥

अब राक्षस मन्त्री के घर चलूँ (थका सा घूम कर) अरे कोई चौकीदार है ? स्वामी राक्षस मन्त्री से जाकर कहो कि 'करभक काम पूरा करके पटने से दौड़ा आता है ।

(दौवारिक आता है)

दौवारिक—अजी ! चिल्लाओ मत, स्वामी राक्षस मन्त्री को राज काज सोचते २ सिर मे ऐसी बिथा हो गई है कि अब तक सोने के बिछौने से नहीं उठे, इससे एक घड़ी भर ठहरो, अवसर मिलता है तो मैं निवेदन किये देता हूँ ।

(परदा उठता है और सोने के बिछोने पर चिन्ता में भरा राक्षस और शकटदास दिखाई पड़ते हैं ।)

राक्षस—(आप ही आप)—

कारज उलटो होत है, कुटिल नीति के जोर ।
का कीजै सोचत यही, जागि होय है भोर ॥

और भी ।

आरम्भ पहिले सोचि रचना वेश की करि लावहीं ।
इकबात मैं गर्भित बहुत फल गूढ़भेद दिखावहीं ॥

कारन अकारन सोचि फैली क्रियन कों सकुचावहीं।
जे करहिं नाटक बहुत दुख हम सरिस तेऊ पावहीं ॥

और भी वह दुष्ट ब्राह्मण चाणक्य—

दौवारिक—जय जय।

राक्षस—किसी भाँति मिलाया या पकड़ा जा सकता है?

दौवारिक—अमात्य—

राक्षस—(बाँए नेत्र के फड़कने का अपशकुन देख कर आप ही आप) 'ब्राह्मण चाणक्य जय जय' और पकड़ा जा सकता है 'आमात्य' यह उलटी बात हुई और उसी समय असगुन भी हुआ। तौ भी क्या हुआ, उद्यम नहीं छोड़ेंगे। (प्रकाश) भद्र! क्या कहता है?

दौवारिक—अमात्य! पटने से करभक आया है सो आप से मिला चाहता है।

राक्षस—अभी लाओ।

दौवारिक—जो आज्ञा (करभक के पास जाकर, उसको संग ले आकर) भद्र! मन्त्री जी वह बैठे है, उधर जाओ (जाता है)।

करभक—(मन्त्री को देखकर) जय हो, जय हो।

राक्षस—अजी करभक! आओ, आओ, अच्छे हो?—बैठो।

करभक—जो आज्ञा (पृथ्वी पर बैठ जाता है)।

राक्षस—(आप ही आप) अरे! मैंने इसको किस काम का भेद लेने को भेजा था यह भूला जाता है (चिन्ता करता है)

(बेत हाथ में लेकर एक पुरुष आता है)

पुरुष—हटे रहना—बचे रहना—अजी दूर रहो—दूर रहो क्या नहीं देखते?

नृप द्विजादि जिन नरन को, मङ्गल रूप प्रकाश।
ते न नीच मुखहू लखहिं कैसो पास निवास॥*

(आकाश की ओर देखकर) अजी क्या कहा, कि क्यों हटाते हो? अमात्य राक्षस के सिर में पीड़ा सुन कर कुमार मलयकेतु उनको देखने को इधर ही आते हैं। (जाता है)।

(भागुरायण और कंचुकी के साथ मलयकेतु आता है)

मलयकेतु—(लम्बी साँस लेकर—आप ही आप) हा! देखो पिता को मरे आज दस महीने हुए और व्यर्थ वीरता का अभिमान करके अब तक हम लोगों ने कुछ भी नहीं किया, वरन तर्पण करना भी छोड़ दिया। या क्या हुआ मैंने तो पहिले यही प्रतिज्ञा की है।

कर वलय उर ताड़त गिरे, आँचरहु की सुधि नहि परी।
मिलि करहि आरतनाद हाहा, अलक खुलि रज सों भरी॥
जो शोक सों भइ मातुगन की दशा सो उलटाइ हैं।
करि रिपु जुवतिगन की सोई गति पितहि तृप्त कराइ हैं॥

और भी—

रन मरि पितु ढिग जात हम, वीरन की गति पाइ।
कै माता दृग जल धरत, रिपु जुवती मुख लाइ॥

(प्रकाश) अजी जाजले! सब राजा लोगो से कहो कि "मैं विना कहे सुने राक्षस मन्त्री के पास अकेला जा कर उनको प्रसन्न करूँगा" इससे वे सब लोग उधर ही ठहरें।

कंचुकी—जो आज्ञा (घूमते घूमते नेपथ्य की ओर देख कर) अजी राजा लोग! सुनो—कुमार की आज्ञा है कि मेरे साथ

---

* प्राचीनकाल में आचार्य राजा आदि नीचों को नहीं देखते थे।

कोई न चले (देख कर आनन्द से) महाराज कुमार ! आप देखिये । आपकी आज्ञा सुनते ही सब राजा रुक गए—

अति चपल जे रथ चलत ते, सुनि चित्र से तुरतहि भए ।
जे खुरन खोदत नभ-पथहि, ते बाजिगन झुक रुकि गए ॥
जे रहे धावत ठिठक ते, गज मूक घण्टा सह सधे ।
मरजाद तुव नहिं तजहिं नृपगण जलधि से मानहुँ बँधे ॥

मलकेतु—अजी जाजले ! तुम भी सब लोगों को लेकर जाओ, एक केवल भागुरायण मेरे संग रहे ।

कंचुकी—जो आज्ञा (सब को लेकर जाता है) ।

मलयकेतु—मित्र भागुरायण ! जब मैं यहाँ आता था तो भद्रभट प्रभृति लोगों ने मुझसे निवेदन किया कि "हम राक्षस मन्त्री के द्वारा कुमार के पास नहीं रहा चाहते, कुमार के सेनापति शिखरसेन के द्वारा रहेंगे । दुष्ट मन्त्री ही के डर से तो चन्द्रगुप्त को छोड़ कर यहाँ सब बात का सुभीता जान कर कुमार का आश्रय लिया है ।" सो उन लोगों की बात का मैंने आशय नहीं समझा * ।

भागुरायण—कुमार ! यह तो ठीक ही है, क्योंकि अपने कल्याण के हुतु सब लोग स्वामी का आश्रय हित और प्रिय के द्वारा करते हैं ।

मलयकेतु—मित्र भागुरायण ! तो फिर राक्षस मन्त्री तो हम लोगों का परमप्रिय और बड़ा हित है ।

---

* चाणक्य के मन्त्र ही से लोगों ने मलयकेतु से ऐसा कहा था ।

भागुरायण—ठीक है, पर बात यह है कि अमात्य राक्षस का बैर चाणक्य से है, कुछ चन्द्रगुप्त से नहीं है, इससे जो चाणक्य की बातो से रूठ कर चन्द्रगुप्त उससे मन्त्री का काम ले ले और नन्दकुल की भक्ति से "यह नन्द ही के वंश का है" यह सोच कर राक्षस चन्द्रगुप्त से मिल जाय और चन्द्रगुप्त भी अपने बड़े लोगों का पुराना मन्त्री समझकर उसको मिला ले, तो ऐसा न हो कि कुमार हम लोगों पर भी विश्वास न करें।

मलयकेतु—ठीक है, मित्र भागुरायण! राक्षस मन्त्री का घर कहाँ है?

भागुरायण—इधर कुमार इधर (दोनो घूमते हैं) कुमार! यही राक्षस मन्त्री का घर है—चलिए।

मलयकेतु—चलें (दोनों राक्षस के निकट जाते हैं)।

राक्षस—अहा! स्मरण आया (प्रकाश) कहो जी तुमने कुसुमपुर में स्तन कलस वैतालिक को देखा था?

करभक—क्यों नहीं?

मलयकेतु—मित्र भागुरायण! जब तक कुसुमपुर की बातें हो तब तक हम लोग इधर ही ठहर कर सुनें कि क्या बात होती है क्योंकि—

भेद न कछु जामैं खुलै, याही भय सब ठौर।
नृप सों मन्त्री जन कहहिं, बात और की और॥

भागुरायण—जो आज्ञा (दोनो ठहर जाते हैं)।

राक्षस—क्यों जी! काम सिद्ध हुआ?

करभक—अमात्य की कृपा से सब काम सिद्ध ही हैं!

मलयकेतु—मित्र भागुरायण ! वह कौन सा काम है ?

भागुरायण—कुमार ! मन्त्री के जी की बातें बड़ी गुप्त हैं। कौन जाने ? इससे देखिये अभी सुन लेते हैं कि क्या कहते है।

राक्षस—अजी ! भली भांति कहो।

करभक—सुनिये—जिस समय आपने आज्ञा दी कि करभक तुम जाकर वैतालिक स्तनकलस से कह दो कि जब-जब चाणक्य चन्द्रगुप्त की आज्ञा भङ्ग करे तब-तब तुम ऐसे श्लोक पढ़ो जिससे उसका जी और भी फिर जाय।

राक्षस—हाँ, तब ?

करभक—तब मैंने पटने में जाकर स्तनकलस से आपका संदेसा कह दिया।

राक्षस—तब ?

करभक—इसके पीछे नन्दकुल के विनाश से दुःखी लोगों का जी बहलाने के हेतु चन्द्रगुप्त ने कुसुमपुर में कौमुदी महोत्सव होने की डौड़ी पिटा दी और उसको बहुत दिन से बिछुड़े हुए मित्रों के मिलाप की भांति पुरके निवासियों ने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक स्नेह से मान लिया।

राक्षस—(आँसू भर कर) हा देव नन्द।

जदपि उदित कुमुदन सहित, पाइ चाँदनी चन्द।
तदपि न तुम बिन लसत है, नृपससि ! जगदानन्द॥

हाँ फिर क्या हुआ ?

करभक—तब चाणक्य दुष्ट ने सब लोगों के नेत्र के परमानन्द-दायक उस उत्सव को रोक दिया और उसी समय

स्तनकलस ने ऐसे ऐसे श्लोक पढ़े कि राजा का भी मन फिर जाय।

राक्षस—वाह मित्र स्तनकलस, वाह क्यों न हो ! अच्छे समय में भेद-बीज बोया है, फल अवश्य होगा। क्योंकि—

नृप रूठै अचरज कहा, सकल लोग जा सङ्ग।
छोटे हू माने बुरो, परे रङ्ग में भङ्ग ॥

मलयकेतु—ठीक है (नृप रूठ यह दोहा फिर पढता है।)

राक्षस—हाँ फिर क्या हुआ ?

करभक—तब आज्ञा भङ्ग से रुष्ट होकर चन्द्रगुप्त ने आपकी बड़ी प्रशंसा की और दुष्ट चाणक्य से अधिकार ले लिया।

मलयकेतु—मित्र भागुरायण ! देखो प्रशंसा करके राक्षस में चन्द्रगुप्त ने अपनी भक्ति दिखाई।

भागुरायण—गुण प्रशंसा से बढ़कर चाणक्य का अधिकार लेने से।

राक्षस—क्योंजी, एक कौमुदी-महोत्सव के निषेध ही से चाणक्य चन्द्रगुप्त मे बिगाड़ हुआ। कि कोई और कारण भी है।

मलयकेतु—क्यों मित्र भागुरायण ! अब और बैर मे वह क्या फल निकालेगे ?

भागुरायण—यह फल निकाला है कि चाणक्य बड़ा बुद्धिमान है वह व्यर्थ चन्द्रगुप्त को क्रोधित न करावेगा और चन्द्र-गुप्त भी उसकी बातें जानता है, वह भी बिना बात चाणक्य का ऐसा अपमान न करेगा, इससे उन लोगों मे बहुत झगड़े से जो बिगाड़ होगा तो पक्का होगा।

करभक—आर्य्य ! और भी कई कारण हैं।

राक्षस– कौन ?

करभक—कि जब पहिले यहाँ से राक्षस और कुमार मलयकेतु भागे तब उसने क्यों नहीं पकड़ा ?

राक्षस—(हर्ष से) मित्र शकटदास ! अब तो चन्द्रगुप्त हाथ में आ जायगा।

शकटदास—अब चन्दनदास छूटेगा और आप कुटुम्ब से मिलेंगे वैसे ही जीवसिद्धि इत्यादि लोग क्लेश से छूटेंगे।

भागुरायण—(आप ही आप) हाँ, अवश्य जीवसिद्धि का क्लेश छूटा।

मलयकेतु—मित्र भागुरायण ! अब मेरे हाथ चन्द्रगुप्त आवेगा, इसमें इनका क्या अभिप्राय है ?

भागुरायण—और क्या होगा ? यही होगा कि यह चाणक्य से छूटे चन्द्रगुप्त के उद्धार का समय देखते हैं।*

राक्षस—अजी, अब अधिकार छिन जाने पर वह ब्राह्मण कहाँ है

करभक—अभी तो पटने में ही है।

राक्षस—(घबड़ा कर) हैं ! अभी वहीं है ? तपोवन नहीं चला गया ? या फिर कोई प्रतिज्ञा नहीं की ?

करभक—अब तपोवन जायगा—ऐसा सुनते हैं।

राक्षस—(घबड़ा कर) शकटदास, यह बात तो काम की नहीं,

---

* राक्षस ने तो "चन्द्रगुप्त हाथ में आवेगा" इस आशय से कहा था कि चन्द्रगुप्त जीता जायगा पर भागुरायण ने भेद करने को मलयकेतु को उसका उलटा अर्थ समझाया।

देव नन्द को नहिं सह्यो, जिन भोजन अपमान।
सो निज कृत नृप चन्द्र की, बात न सहिहै जान॥

मलयकेतु—मित्र भागुरायण! चाणक्य के तपोवन जाने वा फिर प्रतिज्ञा करने मे कौन कार्य्यसिद्धि निकली है?

भागुरायण—कुमार! यह तो कोई कठिन नहीं है, इसका आशय तो स्पष्ट ही है कि चन्द्रगुप्त से जितनी दूर चाणक्य रहैगा उतनी ही कार्य्यसिद्धि होगी।

शकटदास—अमात्य! आप व्यर्थ सोच न करें, क्योंकि देखे—

सबहि भाँति अधिकार लहि, अभिमानी नृप चन्द।
नहिं सहिहै अपमान अब राजा होइ स्वच्छन्द॥
तिमि चाणक्यहु पाइ दुख, एक प्रतिज्ञा पूरि।
अब दूजो करिहै न कछु, उद्यम निज मद चूरि॥

राक्षस—ऐसा ही होगा। मित्र शकटदास! जाकर करभक को डेरा इत्यादि दो।

शकटदास—जो आज्ञा।

(करभक को लेकर जाताहै)

राक्षस—इस समय कुमार से मिलने की इच्छा है।

मलयकेतु—(आगे बढ़कर) मैं आप ही से मिलने आया हूँ।

राक्षस—(संभ्रम से उठकर) अरे कुमार आप ही आ गये! आइए, इस आसन पर बैठिए।

मलयकेतु—मै बैठता हूँ आप विराजिए।

(दोनों बैठते हैं)

मलयकेतु—इस समय सिर की पीड़ा कैसी है?

राक्षस—जब तक कुमार के बदले महाराज कह कर आपको नहीं पुकार सकते तब तक यह पीड़ा कैसे छूटेगी ?*

मलयकेतु—आपने जो प्रतिज्ञा की है तो सब कुछ होगा। परन्तु सब सेना सामन्त के होते भी अब आप किसका आसरा देखते हैं ?

राक्षस—किसी बात का नहीं अब चढ़ाई कीजिए।

मलयकेतु—अमात्य! क्या इस समय शत्रु किसी संकट में है।

राक्षस—बड़े।

मलयकेतु—किस संकट में ?

राक्षस—मन्त्री सङ्कट मे।

मलयकेतु - मन्त्री सङ्कट तो कोई सङ्कट नहीं है।

राक्षस—और किसी राजा को न हो-तो न हो पर चन्द्रगुप्त को तो अवश्य है।

मलयकेतु—आर्य्य! मेरी जान मे चन्द्रगुप्त को और भी नहीं है,

राक्षस—आपने कैसे जाना कि चन्द्रगुप्त को मन्त्री-संकट नहीं है ?

मलयकेतु—क्योंकि चन्द्रगुप्त के लोग तो चाणक्य के कारण उससे उदास रहते है, जब चाणक्य ही न रहेगा तब उसके सब कामों को लोग और भी सन्तोष से करेंगे।

राक्षस—कुमार ऐसा नहीं है, क्योंकि यहाँ दो प्रकार के लोग हैं एक चन्द्रगुप्त के साथी, दूसरे नन्दकुल के मित्र, उनमें जो चन्द्रगुप्त के साथी हैं उनको चाणक्य ही

---

* अर्थात् चन्द्रगुप्त को जीत कर जब आपको महाराज बना लेंगे तब स्वस्थ होंगे।

से दुःख था नन्दकुल के मित्रों को कुछ दुःख नहीं है, क्योंकि वह लोग तो यही सोचते हैं कि इसी कृतघ्न चन्द्रगुप्त राज्य के लोभ से अपना पितृकुल नाश किया है, पर क्या करें उनका कोई आश्रय नहीं है इससे चन्द्रगुप्त के आसरे पड़े हैं, जिस दिन आपको शत्रु के नाश में और अपने पक्ष के उद्धार मे समर्थ देखेंगे उसी दिन चन्द्रगुप्त को छोड़ कर आप से मिल जायंगे, इसके उदाहरण हमी लोग हैं।

मलयकेतु—आर्य। चन्द्रगुप्त के हारने का एक यही कारण है कि कोई और भी है ?

राक्षस—और बहुत क्या होंगे एक यही बड़ा भारी है।

मलयकेतु—क्यों आर्य्य ? यही क्यों प्रधानहै ? क्या चन्द्रगुप्त और मन्त्रियों से आप अपना काम करने में असमर्थ हैं ?

राक्षस—निरा असमर्थ है।

मलयकेतु—क्यों ?

राक्षस—यों कि जो आप राज्य-सम्भालते हैं या जिनका राज राजा और मन्त्री दोनो करते हैं वह राजा ऐसे हो तो हों; परन्तु चन्द्रगुप्त तो कदापि ऐसा नहीं है। चन्द्रगुप्त एक तो दुरात्मा है दूसरे वह तो सचिव ही के भरोसे सब काम करता है; इससे वह कुछ व्यवहार जानता ही नहीं, तो फिर वह सब काम कैसे कर सकता है ? क्योंकि—

लक्ष्मी करत निवास अति, प्रबल सचिव नृप पाय।
पै निज बाल सुभाव सों, इकहि तजत अकुलाय॥

और भी

जो नृप बालक सो रहत, सदा सचिव के गोद।
बिन कछु जग देखे सुने, सो नहिं पावत मोद ॥

मलयकेतु—(आप ही आप) तो हम अच्छे हैं, कि सचिव के अधिकार में नहीं (प्रकाश) अमात्य ! यद्यपि यह ठीक है तथापि जहाँ शत्रु के अनेक छिद्र हैं तहाँ एक इसी सिद्धि से सब काम न निकलेगा।

राक्षस—कुमार के सब काम इसी से सिद्ध होंगे। देखिए—

चाणक्य को अधिकार छूट्यौ चन्द्र हैं राजा नए।
पुर नन्दमें अनुरक्त तुम निज बलसहित चढ़ते भये ।।

जब आप हम—(कह कर लज्जा से कुछ ठहर जाता है)

तुव बस सकल उद्यम सहित रन मति करी।
वह कौनसी नृप ! बात जो नहिं सिद्धि ह्वै है ता घरी ।।

मलयकेतु—अमात्य ? जो अब आप ऐसा लड़ाई का समय देखते हैं तो देर करके क्यो बैठे हैं ? देखिए—

इनको ऊँचो सीस है, वाको उच्च करार।
श्याम दोऊ वह जल श्रवत,ये गण्डन मधु धार ॥
उतै भँवर को शब्द इत, भँवर करत गुंजार।
निज सम तेहि लखि नासि है, दन्तनतोरि कछार ॥
सीस सोन सिन्दूर सो, ते मतङ्ग बल दाप।
सोन सहज ही सोखि हैं, निश्चय जानहु आप ॥*

और भी—

गरजि गरजि गभीर रव, बरसि बरसि मधुधार।
शत्रु नगर गज घेरिहैं, घन जिमि बिबिध पहार ॥

---

* पटना घेरने में सोन उतर कर जाना था।

(शस्त्र उठा कर भागुरायण के साथ जाता है)

राक्षस—कोई है ?

(प्रियम्बदक आता है)

प्रियम्बदक—आज्ञा ?

राक्षस—देख तो द्वार पर कौन भिक्षुक खड़ा है ?

प्रियम्बदक—जो आज्ञा (बाहर जाकर फिर आता है) अमात्य ? एक क्षपणक भिक्षुक ।

राक्षस—(असगुन जान कर आप ही आप) पहिले ही क्षपणक का दर्शन हुआ ।

प्रियम्बदक—जीवसिद्धि है ।

राक्षस—अच्छा, बुलाकर ले आ ।

प्रियम्बदक—जो आज्ञा (जाता है)

(क्षपणक आता है)

क्षपणक—पहिले कटु परिणाम मधु, औषधि सम उपदेस ।
मोह व्याधि के वैद्य गुरु, जिन को सुनहु निदेस ॥

(पास जाकर) उपासक ? धर्म लाभ हो ।

राक्षस—जोतिषी जी बताओ अब हम लोग प्रस्थान किस दिन करैं ?

क्षपणक—(कुछ सोकचर) उपासक ? मुहूर्त्त तो देखा । आज भद्रा तो पहर पहिले ही छूट गई है और तिथि भी सम्पूर्ण चन्द्रा पौर्णमासी है और आप लोगों को उत्तर से दक्षिण जाना है और नक्षत्र भी दक्षिण ही है ।

अथये सूरहि चन्द के, उदये गमन प्रसस्त ।
पाइ लगन बुध केतुतो, उदयो हू भो अस्त ।*

राक्षस—अजी पहिले तो तिथि नहीं शुद्ध है ।

क्षपणक—उपासक ?

एक गुनी तिथि होत है, त्यों चौगुन नक्षत्र ।
लगनहोत चौंसठ गुनो, यह भाखत सब पत्र ॥
लगनहोत है शुभ लगन, छोड़ि क्रूर ग्रह एक ॥
जाहु चन्द बल देखि कै पावहु लाभ अनेक ॥ऽ

---

* भद्रा छूट गई अर्थात् कल्यण को तो आपने जब चन्द्रगुप्त का पक्ष छोड़ा तभी छोड़ा और संपूर्ण चन्द्रा पौर्णमासी है अर्थात् चन्द्रगुप्त का प्रताप पूर्ण व्याप्त है । उत्तर नाम, प्राचीन पक्ष छोड़कर दक्षिण जाना है अर्थात् यमकी दिशा को जाना है । नक्षत्र दक्षिण है अर्थात् आपका वास (विरुद्ध पक्ष) नक्षत्र और आपका दक्षिण पक्ष (मलयकेतु) नक्षत्र (बिना छत्र के) है । प्रथम इत्यदि, तुम जो हो उसकी बुद्धि के अस्त के समय और चन्द्रगुप्त के उदय के समय जाना अच्छा है अर्थात् चाणक्य की ऐसे समय जय होगी । लग्न अर्थात् कारण भाव में बुध चाणक्य पड़ा है इससे केतु अर्थात् मलयकेतु का उदय भी है तौ भी अस्त होगा । अर्थात् इस युद्ध में चन्द्रगुप्त जीतैगा और मलयकेतु हारेगा । 'सूर अथए' इस पद से जीवसिद्ध ने अमङ्गल भी किया । अश्विन पूर्णिमा तिथि, भरणी नक्षत्र, गुरुद्वार, मेष के चन्द्रमा, मीन लग्न में उसने यात्रा बतलाई । इसमे भरणी नक्षत्र गुरुवार, पूर्णिमा तिथि यह सब दक्षिण की यात्रा मे निषिद्ध हैं । फिर सूर्य मृत है चन्द्र जीवित है यह भी बुरा है । लग्न मे मीन का बुध पड़ने से बुरा नीच का होने से बुरा है । यात्रा मे नक्षत्र दक्षिण होने ही से बुरा है !

ऽ अर्थात् मलयकेतु का साथ छोड़ दो तो तुम्हारा भला हो । वास्तव में चाणक्य के मित्र होने से जीवसिद्धि ने साइत भी उलटी दी ज्योतिषके

राक्षस—अजी तुम और जोतिषियो से जाकर झगड़ो।

क्षपणक—आप ही झगड़िये, मैं जाता हूँ।

राक्षस—क्या आप रूठ तो नहीं गए?

क्षपणक—नहीं तुमसे जोतिसी नहीं रूसा है।

राक्षस—तो कौन रूसा है?

क्षपणक—(आप ही आप) भगवान्, क्योंकि तुम अपना पक्ष छोड़ कर शत्रु का पक्ष ले बैठे हो (जाता है)

राक्षस—प्रियम्बदक? देख कौन समय है?

प्रियम्बदक—जो आज्ञा (बाहर से ही आता है) आर्य्य? सूर्य्यास्त होता है।

राक्षस—(आसन से उठ कर और देखकर) अहा?

भगवान् सूर्य्य अस्ताचल को चले—

जब सूरज उदयो प्रबल, तेज धारि आकास।
तब उपवन तरुवर सबै, छायाजुत भे पास॥
दूर परे ते तरु सबै, अस्त भये रवि ताप।
जिमि धन बिनस्वामिहि तजै, भृत्य स्वारथी आप॥

(दोनो जाते हैं)

इति चतुर्थाऽङ्कः।

अनुमार अत्यन्त क्रूरवेला क्रूरग्रहवेध में युद्ध आरम्भ होना चाहिए इसके विरुद्ध सोम्य समय में युद्धयात्रा कही, जिसका फल पराजय है।

पञ्चम अङ्क

(हाथ में मोहर, गहने की पेटी और पत्र लेकर सिद्धार्थक आता है)

सिद्धार्थक—अहाहा !

देसकाल के कलस में, सिंची बुद्धि-जल जौन ।
लता-नीति चाणक्य की, बहु फल देहैं तौन ॥
अमात्य राक्षस के मोहर का, आर्य्य चाणक्य का लिखा हुआ यह लेख और मोहर तथा यह आभूषण की पेटिका लेकर मैं पटने जाता हूँ (नेपथ्य की ओर देख कर) अरे ? यह क्या क्षपणक आता है ? हाय हाय ! यह तो बुरा असगुन हुआ । तो मैं सूरज को देख कर इसका दोष छुड़ा लूँ ।

(क्षपणक आता है)

क्षपणक—नमो नमो अर्हन्त को, जो निज बुद्धि प्रताप ।
लोकोत्तर की सिद्धि सब, करत हस्तगत आप ॥

सिद्धार्थक—भदन्त ! प्रणाम ।

क्षपणक—उपासक ? धर्म्मलाभ हो (भली भाँति देख कर) आज तो समुद्र पार होने का बड़ा भारी उद्योग कर रक्खा है ।

सिद्धार्थक—भदन्त ! तुमने कैसे जाना !

क्षपणक—इसमें छिपी कौन बात है ? जैसे समुद्र में नाव पर सबके आगे मार्ग दिखाने वाला माँझी रहता है, सेवै ही तेरे हाथ मे यह लखौटा है ।

सिद्धार्थक—अजी भदन्त! भला यह तुमने ठीक जाना कि मैं परदेश जाता हूँ, पर यह कहो कि आज दिन कैसा है?

क्षपणक—(हँस कर) वाह श्रावक वाह! तुम मूँड़ मुड़ा कर भी नक्षत्र पूछते हो?

सिद्धार्थक—भला अभी क्या बिगड़ा है? कहते क्यों नहीं? दिन अच्छा होगा जायँगे, न अच्छा होगा फिर आवेंगे।

क्षपणक—चाहे दिन अच्छा हो या न अच्छा हो, मलयकेतु के कटक से बिना मोहर भए कोई जाने नहीं पाता।

सिद्धार्थक—यह नियम कबसे हुआ?

क्षपणक—सुनो, पहिले तो कुछ भी रोक टोक नहीं थी, पर जब से कुसुमपुर के पास आए हैं तब से यह नियम हुआ है कि बिना मोहर के न कोई जाये न आवे। इससे जो तुम्हारे पास भागुरायण की मोहर हो तो जाओ नहीं तो चुप बैठ रहो, क्योंकि पीछे से तुम्हें हाथ पैर न बँधवाना पड़े।

सिद्धार्थक—क्या यह तुम नहीं जानते कि हम राक्षस के अंतरङ्ग खिलाड़ी मित्र हैं? हमें कौन रोक सकता है।

क्षपणक—चाहे राक्षस के मित्र हो चाहे पिशाच के, बिना मोहर के कभी न जाने पाओगे।

सिद्धार्थक—भदन्त! क्रोध मत करो, कहो कि काम सिद्ध हो।

क्षपणक—जाओ, काम सिद्ध होगा, हम भी पटने जाने के हेतु मलयकेतु से मोहर लेने जाते हैं।

(दोनों जाते हैं)

॥ प्रवेशक ॥

(भागुरायण और सेवक आते हैं)

भागुरायण—(आप ही आप) चाणक्य की नीति भी बड़ी विचित्र है।

कहूँ बिरल कहुँ सघन कहुँ, विफल कहूँ फलवान।
कहुँ कृस, कहुँ अति थूल कछु, भेद परत नहिं जान॥
कहूँ गुप्त अति ही रहत, कबहूँ प्रकट लखात।
कठिन नीति चाणक्य की, भेद न जान्यो जात॥

(प्रगट) भासुरक! मलयकेतु से मुझे क्षण भर भी दूर रहने में दुःख होता है इससे यहीं बिछौना बिछा तो बैठें।

सेवक—जो आज्ञा—बिछौना बिछा है, विराजिए।

भागुरायण—(आसन पर बैठ कर) भासुरक! बाहर कोई मुझसे मिलने आवे तो आने देना।

सेवक—जो आज्ञा (जाता है)।

भागुरायण—(आप ही आप करुणा से) राम राम! मलयकेतु तो मुझसे इतना प्रेम करता है, मैं उसका बिगाड़ किस तरह करूँगा? अथवा—

जस कुल तजि अपमान सहि, धन हित परबस होय।
जिन बेच्यो निज प्रान तन, सबै सकत करि सोय॥

(आगे आगे मलय केतु और पीछे प्रतिहारी आते हैं)

मलयकेतु—(आप ही आप) क्या करें राक्षस का चित्त मेरी ओर से कैसा है यह सोचते हैं तो अनेक प्रकार के विकल्प उठते हैं, कुछ निर्णय नहीं होता।

नन्दवंश को जानि कै, ताहि चन्द्र की चाह।
कै अपनायो जानि निज, मेरो करत निवाह॥

को हित अनहित तासु को, यह नहिं जान्यो जात।
तासों जिय सन्देह अति, भेद न कछू लखात ॥

(प्रगट) विजये ! भागुरायण कहाँ हैं देख तो ?

प्रतिहारी—महाराज ! भागुरायण वह बैठे हुए आपकी सेना के जाने वाले लोगों को राहखर्च और परवाना बाँट रहे हैं

मलयकेतु—विजये ! तुम दबे पाँव से आओ, मैं पीछे से जाकर मित्र भागुरायण की आँखें बन्द करता हूँ।

प्रतिहारी—जो आज्ञा।

(दोनों दबे पाँव से चलते हैं और भासुरक आता है)

भासुरक—(भागुरायण से) बाहर क्षपणक आया है उसको परवाना चाहिए।

भागुरायण—अच्छा, यहाँ भेज दो।

भासुरक—जो आज्ञा (जाता है)।

(क्षपणक आता है)

क्षपणक—श्रावक को धर्म लाभ हो।

भागुरायण—(छल से उसकी ओर देख कर) यह तो राक्षस का मित्र जीवसिद्धि है (प्रगट) भवन्त ! तुम नगर मे राक्षस के किसी काम से जाते होगे।

क्षपणक—(कान पर हाथ रख कर) छी छी ! हम से राक्षस वा पिशाच से क्या काम ?

भागुरायण—आज तुम से और मित्र से कुछ प्रेम कलह हुआ है, पर यह तो बताओ कि राक्षस ने तुम्हारा कौन अपराध किया है ?

क्षपणक—राक्षस ने कुछ अपराध नहीं किया है, अपराधी तो हम हैं।

भागुरायण—ह ह ह ह। भदन्त ! तुम्हारे इस कहने से तो मुझको सुनने की और भी उत्कण्ठा होती है।

मलयकेतु—(आप ही आप) मुझ को भी।

भागुरायण—तो भदन्त ! कहते क्यों नहीं ?

क्षपणक—तुम सुन के क्या करोगे ?

भागुरायण—तो जाने दो, हमें कुछ आग्रह नहीं है, गुप्त हो तो मत कहो।

क्षपणक—नहीं उपासक ! गुप्त ऐसा नहीं है, पर वह बहुत बुरी बात है।

भागुरायण—तो जाओ, हम तुम को परवाना न देंगे।

क्षपणक—(आप ही आप की भाँति) जो यह इतना आग्रह करता है तो कह दें (प्रकट) श्रावक ! निरुपाय होकर कहना पड़ा। सुनो—मै पहिले कुसुमपुर मे रहता था, तब संयोग से मुझ से राक्षस से मित्रता हो गई, फिर उस दुष्ट राक्षस ने चुपचाप मेरे द्वारा विषकन्या का प्रयोग कराके विचारे पर्व्वतेश्वर को मार डाला।

मलयकेतु—(आँखों में पानी भरके) हाय हाय ! राक्षस ने हमारे पिता को मारा, चाणक्य ने नहीं मारा हा !

भागुरायण—हाँ तो फिर क्या हुआ ?

क्षपणक—फिर मुझे राक्षस का मित्र जानकर उस दुष्ट चाणक्य ने मुझको नगर से निकाल दिया, तब मैं राक्षस के यहाँ आया, पर राक्षस ऐसा जालिया है कि अब मुझ

को ऐसा काम करने को कहता है कि जिस से मेरा प्राण जाय।

भागुरायण—भदन्त! हम तो यह समझते हैं कि पहिले जो आधा राज देने को कहा था, वह न देने को चाणक्य ही ने यह दुष्ट कर्म्म किया, राक्षस ने नहीं किया।

क्षपणक—(कान पर हाथ रख कर) कभी नहीं, चाणक्य तो विष-कन्या का नाम भी नहीं जानता, यह घोर कर्म्म उस दुर्बुद्धि राक्षस ही ने किया है।

भागुरायण—हाय हाय! बड़े कष्ट की बात है। लो, मुहर तो तुमको देते हैं, पर कुमार को भी यह बात सुना दो।

मलयकेतु—(आगे बढ़ कर)

सुन्यौ मित्र! श्रुति भेद कर, शत्रु कियौ जो हाल।
पिता मरन को मोहि दुख, दुगुन भयो एहि काल॥

क्षपणक—(आप ही आप) मलयकेतु दुष्ट ने यह बात सुन ली तो मेरा काम हो गया है (जाता है)।

मलयकेतु—(दाँत पीस कर ऊपर देख कर) अरे राक्षस!

जिन तोपै विश्वास करि, सौंप्यौ सब धन धाम।
ताहि मारि दुख दै सबनि, साँचो किय निज नाम॥

भागुरायण—(आप ही आप) आर्य्य चाणक्य की आज्ञा है कि "अमात्य राक्षस के प्राण की सर्वथा रक्षा करना" इससे अब बात फेरें। (प्रकाश) कुमार! इतना आवेग मत कीजिये। आप आसन पर बैठिये तो मैं कुछ निवेदन करूँ।

मलयकेतु—मित्र क्या कहते हो? (बैठ जाता है)।

भागुरायण—कुमार! बात यह है कि अर्थशास्त्र वालो की

मित्रता और शत्रुता अर्थ ही के अनुसार होती है। साधारण लोगों की भाँति इच्छानुसार नहीं होती। उस समय सर्वार्थसिद्धि को राक्षस राजा बनाया चाहता था तब देव पर्वतेश्वर ही कार्य में कंटक थे तो उस कार्य्य की सिद्धि के हेतु यदि राक्षस ने ऐसा किया तो कुछ दोष नहीं। आप देखिये—

मित्र शत्रु ह्वै जात हैं, शत्रु करहिं अति नेह।
अर्थ-नीति-बस लोग सब, बदलहिं मानहुँ देह॥

इससे राक्षस को ऐसी अवस्था में दोष नहीं देना चाहिये। और जब तक नन्द राज्य न मिले तब तक उस पर प्रकट स्नेह ही रखना नीति सिद्ध है। राज मिलने पर कुमार जो चाहेंगे करेंगे।

मलकेतु—मित्र! ऐसा ही होगा। तुमने बहुत ठीक सोचा है। इस समय इसके बध करने से प्रजागण उदास हो जाँयगे और ऐसा होने से जय मे भी सन्देह होगा।

(एक मनुष्य आता है)

मनुष्य—कुमार की जय हो। कुमार के कटकद्वार के रक्षाधिकारी दीर्घचक्षु ने निवेदन किया है कि "मुद्रा लिये बिना एक पुरुष कुछ पत्र सहित पकड़ा गया है सो उसको एक बेर आप देख लें।"

भागुरायण—अच्छा उसको ले आओ।

पुरुष—जो आज्ञा।

(जाता है और हाथ बाँधे हुए सिद्धार्थक को लेकर आता है)

सिद्धार्थक—(आप ही आप)

गुन पै रिझवत, दोस सो दूर बचावत जौन ।
स्वामी-भक्ति जननी सरिस, प्रनमत नित हम तौन ॥

पुरुष—(हाथ जोड़ कर) कुमार ! यही मनुष्य है ।

भागुरायण—(अच्छी तरह देख कर) यह क्या बाहर का मनुष्य है या यहीं किसी का नौकर है ?

सिद्धार्थक—मैं अमात्य राक्षस का पासवर्ती सेवक हूँ ।

भगुरायण—तो तुम क्यो मुद्रा लिये बिना कटक के बाहर जाते थे ?

सिद्धार्थक—आर्य्य ! काम की जल्दी से ।

भागुरायण—ऐसा कौन काम है जिसके आगे राजाज्ञा का भी कुछ मोल नहीं गिना ?

सिद्धार्थक—(भागुरायण के हाथ में लेख देता है) ।

भागुरायण—(लेख लेकर देख कर) कुमार ! इस लेख पर अमात्य राक्षस का मुहर है ।

मलयकेतु—ऐसी तरह से खोल कर दो कि मुहर न टूटे ।

भागुरायण—(पत्र खोल कर मलयकेतु को देता है) ।

मलयकेतु—(पढता है) स्वस्ति । यथा स्थान मे कहीं से कोई किसी पुरुष विशेष को कहता है । हमारे विपक्ष को निराकरण करके सच्चे मनुष्य ने सचाई दिखलाई । अब हमारे पहिले के रक्खे हुए हमारे हितकारी चरो को भी जो जो दने को कहा था वह देकर प्रसन्न करना । यह लाग प्रसन्न होंगे, तो अपना आश्रय छूट जाने पर सब भाँति अपने उपकारी की सेवा करेंगे । सच्चे लोग कहीं नहीं भूलते तो भी हम स्मरण कराते हैं । इन में से कोई तो शत्रु का कोष और हाथी चाहते

हैं और कोई राज चाहते हैं। हमको सत्यवादी ने जो तीन अलङ्कार भेजे सो मिले हमने भी लेख अशून्य करने को कुछ भेजा है सो लेना। और जबानी हमारे अत्यन्त प्रामाणिक सिद्धार्थक से सुन लेना *।

मलयकेतु—मित्र भागुरायण! इस लेख का आशय क्या है?

भागुरायण—भद्र सिद्धार्थक! यह लेख किस का है?

सिद्धार्थक—आर्य्य! मैं नहीं जानता।

भागुरायण—धूर्त! लेख लेकर जाता है और यह नहीं जानता कि किसने लिखा है, और सँदेशा किस से कहेगा?

सिद्धार्थक—(डरते हुए की भाँति) आप से।

भागुरायण—क्यों रे! हम से?

सिद्धार्थक—आप ने पकड़ लिया। हम कुछ नहीं जानते कि क्या बात है।

भागुरायण—(क्रोध से) अब जानेगा। भद्र भासुरक! इस को बाहर लेजाकर जब तक यह सब कुछ न बतलावे तब तक खूब मारो।

पुरुष—जो आज्ञा (सिद्धार्थक को बाहर लेकर जाता है और हाथ मे एक पेटी लिये फिर आता है) आर्य्य! उसका मारने के समय उसके बगल में से यह मुहर की हुई पेटी गिर पड़ी।

भागुरायण—(देख कर) कुमार! इस पर भी राक्षस की मुहर है।

---

* यह वही लेख है जिसको चाणक्य से धोखा देकर और अपने हाथ से राक्षस की मुहर उस पर करके सिद्धार्थक को दिया था।

मलयकेतु—यही लेख अशून्य करने को होगा। इसकी भी मुहर बचा कर हम को दिखलाओ।

भागुरायण—(पेटी खोलकर दिखलाता है)

मलयकेतु—अरे! यह तो वही सब आभारण है जो हमने राक्षस को भेजे थे*। निश्चय यह चन्द्रगुप्त को लिखा है।

भागुरायण—कुमार! अभी सब संशय मिट जाता है। भासुरक! उसको और मारो।

पुरुष- जो आज्ञा(बाहर जाकर फिर आता है †) आर्य्य! हमने उसको बहुत मारा है, अब कहता है कि अब हम कुमार से सब कह देंगे।

मलयकेतु—अच्छा, ले आओ।

---

* दूसरा अङ्क पढ़ने से यहाँ की सब कथा खुल जायगी। चाणक्य ने चालाकी करके चन्द्रगुप्त से पर्वतेश्वर के आभरण का दान कराया था और अपने ही ब्राह्मणों को दिलवाया था। उन्हीं लोगों ने राक्षस के हाथ वह आभरण बेचे जिसके विषय में कि इस पत्र मे लिखा है "हमको सत्यवादी ने तीन अलङ्कार भेजे सो मिले।" जिसमे मलयकेतु को विश्वास हो कि पर्वतेश्वर के आभरण राक्षस ने मोल नही लिए किन्तु चन्द्रगुप्त ने उसको भेजे और मलयकेतु ने कञ्चुकी के द्वारा जो आभरण राक्षस को भेजे थे वही इस पेटी मे बन्द थे, जिसमें मलयकेतु को यह सन्देह हो कि राक्षस इन आभरणो को चन्द्रगुप्त को भेजता है।

† ऐसे अवसर पर नाटक खेलने वालों को उचित है कि बाहर जाकर बहुत जल्द न चले आवे, और वह जिस कार्य के हेतु गये हैं नेपथ्य में उसका अनुकरण करें। जैसा भासुरक को सिद्धार्थक के मारने के हेतु भेजा गया है तो उसको नेपथ्य मे मारने का सा कुछ शब्द करके तब फिर आना चाहिए।

पुरुष—जो कुमार की आज्ञा (बाहर जाकर सिद्धार्थ को लेकर आता है)

सिद्धार्थक—(मलयकेतु के पैरो पर गिर कर) कुमार! हमको अभय दान दीजिये।

मलयकेतु—भद्र! उठो, शरणागत जन यहाँ सदा अभय है। तुम इसका वृत्तान्त कहो।

सिद्धार्थक—(उठ कर) सुनिए मुझको अमात्य राक्षस ने यह पत्र देकर चन्द्रगुप्त के पास भेजा था।

मलयकेतु—जबानी क्या कहने को कहा था, वह कहो।

सिद्धार्थक—कुमार! मुझको अमात्य राक्षस ने यह कहने को कहा था कि मेरे मित्र कुलूत देश के राजा चित्रवर्मा, मलयाधिपति सिंहनाद, कश्मीरेश्वर पुष्कराक्ष,* सिन्धु महाराज सिन्धुसेन और पारसीक पालक मेघाक्ष इन पाँच राजाओं से आपसे पूर्व में सन्धि

* कश्मीर के राजा के विषय मे मुद्राराक्षस के कवि को भ्रम हुआ है यह सम्भव होता है। राजतरंगिणी मे कोई राजा पुष्कराक्ष नाम का नहीं है। जिस समय में पाटलिपुत्र में चन्द्रगुप्त राज्य करता था उस समय कश्मीर मे विजय जयेन्द्र सन्धिमान मेघवाहन और प्रवरसेन इन्हीं राजों के होने का सम्भव है। कनिंगहम, लैसन, विलसन इत्यादि विद्वानों के मत मे सौ बरस के लगभग का अन्तर है, इसी से मैने यहाँ कई राजाओ का सम्भव होना लिखा। इन राजाओं के जीवन इतिहास मे पटने तक किसी का आना नहीं लिखा है और न चन्द्रगुप्त के काल को किसी घटना से उन से सम्बन्ध है। मेघाक्ष मेघवाहन को लिखा हो यह सम्भव हो सकता है। क्योंकि मेघवाहन पहले गान्धार देश का राजा था फिर कश्मीर का राजा हुआ। भ्रम से इसको पारसीकराज लिख दिया हो। या सिल्यूकस का शैलाक्ष अनुवाद न करके मेघाक्ष किया हो। सन्धिमान और प्रवरसेन से सिन्धुसेन निकाला हो। भारतवर्ष

हो चुकी है। इसमें पहले तीन तो मलयकेतु का राज चाहते हैं और बाकी दो माल खजाना हाथी चाहते हैं। जिस तरह महाराज ने चाणक्य को उखाड़ कर मुझको प्रसन्न किया उसी तरह इन लोगों को भी प्रसन्न करना चाहिए। यही राजसंदेश है।

मलयकेतु—(आप ही आप) क्या चित्रवर्म्मादि भी हमारे द्रोही हैं ? तभी राक्षस में उन लोगों की ऐसी प्रीति है। (प्रकाश) विजये ? हम अमात्य राक्षस को देखा चाहते हैं।

प्रतिहारी—जो आज्ञा (जाती है)

की पश्चिमोत्तर सीमा पर उस समय सिकन्दर के मरने से बड़ा ही गडबड था इससे कुछ शुद्ध वृत्तान्त नहीं मिलता। सम्भव है कि कवि ने जो कुछ उस समय सुना, लिख दिया। वा यह भी सम्भव है कि यह देश और नाम केवल काव्यकल्पना हो। इतिहासों से यह भी विदित हैं कि मेगास्थनिस (Megasthenes) नामक एक राजपूत सिल्यूकस का चन्द्रगुप्त की सभा में आया था। सम्भव है कि इसी का नाम मेघाक्ष लिखा हो। यदि शुद्ध राजतरंगिणी का हिसाब लीजिए तो एक दूसरी ही लड़ मिलती है। इसके मत से ६५३ बरस कलियुग बीते महाभारत का युद्ध हुआ। फिर १०१ बरस में तीन गोनर्द हुए, अब ७५४ ग० क० संवत् हुआ। इसके पीछे १२६६ बरस के राजाओं का वृत्त नहीं मालूम। (२०२० ग० क०) इस समय के ८६७ वर्ष पीछे उत्पलाक्ष, हिरण्याक्ष और हिरण्यकुल इस नाम के राजा हुए। २७६० ग० क० के पास इनका राज आरम्भ हुआ और २८८७ ग० क० तक रहा। इस वर्ष गत कलि ४६८२ इससे चन्द्रगुप्त का समय २८०० ग० क० हुआ तो उत्पलाक्ष हिरण्य वा हिरण्याक्ष राजा राजतरंगिणी के मत से चन्द्रगुप्त के समय में थे। (राजतरंगिणी प्र० त० २८७ श्लोक से)

(एक परदा हटता है और राक्षस आसन पर बैठा हुआ चिन्ता की मुद्रा मे एक पुरुष के साथ दिखाई पड़ता है।*)

राक्षस—(आप ही आप) चन्द्रगुप्त की ओर के बहुत लोग हमारी सेना में भरती हो रहे हैं इससे हमारा मन शुद्ध नहीं है। क्योंकि—

"उत्पलाक्ष इति ख्यातिं पेशलाक्षतया: गतः।
तत्सूनुस्त्रिशतं सार्द्धात् वर्षाणामवशान्महीम् ॥
तत्पसूनुर्हिरण्याक्षः स्वनामाकपुरं व्यधात्।
क्षमा सप्तत्रिंशतवर्षानसप्तमासाश्च भुक्तवान् ॥
हिरण्यकुलइत्यस्य हिरण्याक्षस्य चात्मजः।
षष्टिं पष्टिंच मुकुलस्तत्सूनुरभवत् समा ॥
अथम्लेच्छगणाकीर्णे मंडलै चंडचेष्टितः।" इत्यादि।

यह सम्बन्ध दो तोन बातो से पुष्ट होता है। एक तो यह स्पष्ट सम्भव है कि उत्पलाक्ष का पुष्कराक्ष हो गया हो। दूसरे उन्हीं लोगो के समय उस प्रान्त मे म्लेच्छो का आना लिखा है। तीसरे इसी समय से गान्धार वर्बर आदि देशो के लोगो का व्यवहार यहाँ प्रचलित हुआ। इन बातो से निश्चित होता है कि यही उत्पलाक्ष का हिरण्याक्ष पुष्कराक्ष नाम से लिखा है, विरोध केवल इतना ही है कि राजतरगिणी में चन्द्रगुप्त का वृत्तान्त नही है।

* इस पाँचवे अङ्क में चार वेर दृश्य वदला है। पहिले प्रवेशक, फिर भागुरायण का प्रवेश और तीसरा यह राक्षस का प्रवेश, चौथा राक्षस का फिर मलयकेतु के पास जाना। नए नाटकों के अनुसार चार दृश्यों वा गर्भाङ्कों मे इसको बाँट सकते हैं, यथा पहिला दृश्य राजमार्ग, दूसरा युद्ध के डेरों के बीच मे मार्ग, तीसरा राक्षस का डेरा, चौथा मलयकेतु का डेरा।

रहत साध्य ते अन्वित अरु विलसत निज पच्छहि ।
सोई साधन साधक जो नहिं छुअत बिपच्छहि ॥
जो पुनि आपु असिद्ध सपच्छ बिपच्छहु मे सम ।
कछु कहुँ नहिं निज पच्छ माँहि जाकौ है संगम ॥
नरपति ऐहे साधनन को अनुचित अङ्गीकार करि ।
सब भाँति पराजित होत है वादी लौ बहुबिधि बिगरि* ॥

---

* न्यायशास्त्र में अनुमान के प्रकरण मे किसी पदार्थ को दूसरे पदार्थ के साथ बराबर रहते देखकर व्याप्तिज्ञान होता है कि जहाँ पहला पदार्थ रहता है वहाँ दूसरा अवश्य रहता होगा । जैसा रसोई के घर में अग्नि के साथ धूएँ को बराबर देखकर व्याप्तिज्ञान होता है कि जहाँ धुआँ होगा वहाँ अग्नि भी अवश्य होगी । इसी भाँति और कहीं भी यदि दूसरे पदार्थ को देखो तो पहिले पदार्थ का ज्ञान होता है कि वहाँ भी अग्नि अवश्य होगी । इसी को अनुमति कहते हैं । जिसकी बाद में सिद्धि करनी हो उसको साध्य कहते हैं, जैसे अग्नि । जिसके द्वारा सिद्धि हो उसे हेतु और साधन कहते हैं, जैसे धूम । जहाँ साध्य का रहना निश्चित हो वह सपक्ष कहलाता है जैसे पाठशाला । जिसमे अनुमिति से साध्य की सिद्धि करनी हो वह पक्ष कहलाता है, जैसे पर्वत । जहाँ साध्य का निश्चय अभाव हो वह विपक्ष कहलाता है, जैसा जलाशय यहाँ पर कवि ने अपनी न्यायशास्त्र की जानकारी का परिचय देने को यह छन्द बनाया है । जैसे न्यायशास्त्र में वाद करने वाला पूर्वोक्त साधनादिकों को न जान कर स्वपक्ष स्थापना में असमर्थ होकर हार जाता है, वैसे ही जो राजा (साधक) सेना आदि साधन से अन्वित है और अपने पक्ष को जनता है विपक्ष से बचता है वह जय पाता है । जो आप साध्यों (सेना नीति आदिकों) से हीन (असिद्ध) है और जिसको शत्रु मित्र का ज्ञान नहीं है और जो अपने पक्ष को नहीं समझता और अनुचित साधन का (अर्थात् शत्रु से मिले हुए लोगों का) अङ्गकार करता

वा जो लोग चन्द्रगुप्त से उदास हो गये हैं वही लोग इधर मिले हैं, मैं व्यर्थ सोच करता हूँ (प्रगट) प्रियम्बदक ! कुमार के अनुयायी राजा लोगों से हमारी ओर से कह दो कि अब कुसुमपुर दिन दिन पास आता जाता है, इससे सब लोग अपनी सेना अलग अलग करके जो जहाँ नियुक्त हो वहाँ सावधानी से रहें।

आगे खस अरु मगध चलै जय ध्वजहि उड़ाए।
यवन और गंधार रहैं मधि सैन जमाए॥
चेदि हून सक राज लोग पीछे सों धावहिं।
कौलूतादिक नृपति कुमारहि घेरे आवहि*॥

है, वह हारता है। (यह राक्षस ने इसी विचार पर कहा कि चन्द्रगुप्त के लोग इधर बहुत मिले हैं इससे हारने का सन्देह है।) दर्शनों का थोड़ा सा वर्णन पाठकगण की जानकारी के हेतु पीछे किया जायगा।

* खस हिमालय के उत्तर की एक जाति। कोई विद्वान् तिब्बत कोई लद्दाख को खस देश मानते हैं। यवन शब्द से मुख्य तात्पर्य यूनान प्रान्त के देशों से है, (Bactri, Lovia, Greek) परन्तु पश्चिम की विदेशी और अन्यधर्मी जाति मात्र को मुहावरे में यवन कहते हैं। गान्धार जिसका अपभ्रंश कन्दहार है। चेदि देश बुन्देलखंड। (कोई कोई चन्दोरी के छोटे शहर को चेदि देश की राजधानी कहते हैं। हून देश योरोप के तत्काल के किसी असभ्य देश का नाम (Huns, Hungary) कोई विद्वान मध्य एशिया में हून देश मानते हैं। शक को कोई विद्वान् तातार देश कहते हैं और कोई (Scythians) को शक कहते हैं। कोई बलूचिस्तान के पास के देशों को शक देश मानते हैं। कौलूत देश के राजा चित्रवर्मादिक राक्षस के बड़े विश्वस्त थे इसी से कुमार की अंगरक्षा इनको दी थी। इन राजाओं के नाम और देश का कुछ और पता मिलने को हम सिकन्दर के विजय की बड़ी बड़ी पुस्तकों को देखें। क्योंकि बहुत सी

प्रियम्वदक—अमात्य की जो आज्ञा (जाता है)

(प्रतिहारी आता है)

प्रतिहारी—अमात्य की जय हो। कुमार अमात्य को देखना चाहते है।

राक्षस—भद्र ? क्षण भर ठहरो। बाहर कौन है।

बातें जिनका पता इस देश की पुस्तको से नहीं लगता विदेशी पुस्तकें उनको सहज मे बतला देती हैं। इस हेतु यहाँ तीन अङ्गरेजी पुस्तकों से थोडा सा अनुवाद करते हैं—(1) Alexander the Great and his successors, (2) History of Greece (3) Plutarch's lives of illustrious men V. II. "सिकन्दर के सिपाही लोग केवल ऋतु और थकावट ही से नहीं डरे किन्तु उन्होंने यह भी सुना कि गंगा छै सौ फुट गहरी और चार मील चौडी है। Ganderites और Praisians के राजागण अस्सी हजार सवार, दो लाख सिपाही, छः हजार हाथी और आठ हजार रथ सजे हुए सिकन्दर से लडने को तैयार हैं। इतनी सेना मगध देश मे एकत्र होना कुछ आश्चर्य की बात नहीं क्योंकि ऐन्द्राकुतस (चन्द्रगुप्त) ने सिल्यूकस को एक ही बेर पाँच सौ हाथी दिये थे और एक बेर छः लाख सेना लेकर सारा हिन्दुस्तान जीता था।" यह गन्दरिटस गान्धार और प्रेसिअन फारस प्रान्त के किसी देश का नाम होगा। हम को इन पाँच राजाओं में कुलूत और मलय इन दो देशों की विशेष चिन्ता है, इसी हेतु इन देशों का विशेष अन्वेषण करके आगे लिखते हैं—एक बेर सिकन्दर (Malli) माल्लि वा मल्लि नामक भारत के विख्यात लडने वाली जाति से जब वह उनको जीतने को गया था मरते मरते बचा। जब सिकन्दर ने उन उन लोगों का दुर्ग घेर लिया और दीवार पर के लोगों को अपने शस्त्र से मार डाला तो साहस करके अकेला दीवार पर चढ़ कर भीतर कूद पडा और वहाँ

(एक मनुष्य आता है)

मनुष्य—अमात्य ! क्या आज्ञा है ?

राक्षस—भद्र ! शकटदास से कहो कि जब से कुमार ने हमको आभरण पहराया है तब से उनके सामने नंगे अंग जाना हमको उचित नहीं है। इससे जो तीन आभरण मोल लिये हैं उनमे से एक भेज दे।

शत्रुओं से ऐसा घिर गया कि यदि उसके सिपाही साथ ही न पहुँचते तो वह टुकड़े टुकड़े हो जाता।" वही मल्ली देश ही मुद्राराक्षस का मलय देश है यह सम्भव होता है। यद्यपि अङ्गरेजी वाले यह देश कहाँ था इसका कुछ वर्णन नही करते किन्तु हिन्दुस्तान से लौटते समय यह देश उसको मिला था इससे अनुमान होता है कि कहीं बलूचिस्तान के पास होगा। आगे चल कर फिर लिखते हैं 'नदियों के मुहाने पर पहुँचने के पीछे उसको एक टापू मिला, जिसको उसने शिलोसतिस Scilloustis लिखा है पर आरियन (आर्य) लोग उस टापू को किलूता Cillutta कहते हैं।" क्या आश्चर्य है कि यही कुलूत हो। वह लोग यह भी लिखते हैं कि चन्द्रगुप्त ने छोटेपन में सिकन्दर को देखा था और उसके विषय में उसने यह अनुमति दी थी कि सिकन्दर यदि स्वभाव अपने वश मे रखता तो सारी पृथ्वी जीतता। अब इन पुस्तकों से राजाओं के नाम भी कुछ मिलाइए। पर्व्वतेश्वर और बर्ब्बर यह दोनो शब्द Barbarian. बर्बरियन के कैसे पास हैं। काश्मीरादि देश का राजा जिसके पंजाब अति निकट है पुष्कराक्ष ग्रीक लोगों के पोरस शब्द के पास है। पुष्कराक्ष से पुसकरस और उससे पोरस हुआ हो तो क्या आश्चर्य है। प्युकेसतस वा पुसेतस (जो सिकन्दर के पीछे पारस का गवर्नर हुआ था) भी पुष्कराक्ष के पास है किन्तु यहाँ पारस का राजा मेघाक्ष लिखा है। इन राजाओं का ठीक ठीक ग्रीक नाम या जो देश उनका विशाखदत्त ने लिखा उसको यूनान वाले उस समय क्या कहते थे यह निर्णय करना

मनुष्य—जो अमात्य की आज्ञा। (बाहर जाता है आभरण लेकर आता है) अमात्य! अलंकार लीजिए।

राक्षस—(अलंकार धारण करके) भद्र! राजकुल में जाने का मार्ग बतलाओ।

प्रतिहारी—इधर से आइए।

राक्षस—अधिकार ऐसी बुरी वस्तु है कि निर्दोष मनुष्य का भी जी डरा करता है।

सेवक प्रभु सों डरत सदाहीं। पराधीन सपने सुख नाहीं॥
जे ऊँचे पद के अधिकारी। तिन को मन ही मन भय भारी॥
सबही द्वेष बड़ेन सो करहीं। अनुछिन कान स्वामि को भरहीं॥

जिमि जे जनमे ते मरै, मिले अवसि बिलगाहिं।
तिमि जे अति ऊँचे चढ़े, गिरि हैं संसय नाहिं॥

प्रतिहारी—(आगे बढ कर) अमात्य! कुमार यह बिराजते हैं, आप जाइये।

राक्षस—अरे कुमार यह बैठे हैं।

लखत चरन की ओर हू, तउ न देखत ताहि।
अचल दृष्टि इक ओर ही, रही बुद्धि अवगाहि॥
कर पै धारि कपोल निज, लसत झुको अवनीस।
दुसह काज के भार सो, मनहु निमित भो सीस॥

बहुत कठिन है। संस्कृत के शब्द भी यूनानी मे इतने बदल जाते हैं जिसका कुछ हिसाब नहीं। चन्द्रगुप्त का ऐन्ड्रोकोत्तस वा सन्ड्रोकोटस पाटलिपुत्र का पालीबोत्रा वा पालीभोत्तरा। तक्षक का तैक्साइल्म। यही बात यदि हम यूनानी शब्दों का संस्कृत के सादृश्यानुसार अनुवाद करें तो उपस्थित होगी। अलेकेजैन्डर एलेकजेन्डर इत्यादि का फ़ारसी सिकन्दर हुआ।

(* आगे बढ़ कर) कुमार की जय हो !

मलयकेतु—आर्य्य। प्रणाम करता हूँ। आसन पर विराजिए।

राक्षस—(बैठता है)

मलयकेतु—आर्य्य ? बहुत दिनों से लोगों ने आप को नहीं देखा।

राक्षस—कुमार। सेना को आगे बढ़ाने के प्रबन्ध मे फसने के कारण हम को यह उपालम्भ सुनना पड़ा।

मलयकेतु—अमात्य ! सेना के प्रयाण का आप ने क्या प्रबन्ध किया है, मैं भी सुनना चाहता हूँ।

राक्षस—कुमार ! आपके अनुयायी राजा लोगों को यह आज्ञा दी है (आगे खस अरु मगध इत्यादि छन्द पढ़ता है)

मलयकेतु—(आप ही आप) हाँ ! जाना जो हमारे नाश करने के हेतु चन्द्रगुप्त से मिले हैं वही हम को घेरे रहेंगे (प्रकाश) आर्य्य ! अब कुसुमपुर कोई आता है या वहाँ जाता है कि नहीं ?

राक्षस—अब यहाँ किसी के आने जाने से क्या प्रयोजन ! पाँच छः दिन में हम लोग ही वहाँ पहुँचेंगे।

मलयकेतु—(आप ही आप) अभी सब खुल जाता है (प्रगट)

हम यदि इन शब्दों को संस्कृत Sanskritised करे तो अलक्षेन्द्र वा श्रीकेन्द्र वा श्रीकन्दर वा शिक्षेन्द्र इत्यादि शब्द होंगे, अब कहिए कहाँ के शब्द कहाँ जा पड़े इसो से ठीक ठीक नाम ग्राम का निर्णय होना बहुत कठिन है। केवल शब्द विद्या के पण्डितो के कुतूहल के हेतु इतना भी लिखा गया।

* यहीं पर चौथा दृश्य आरम्भ होता है।

जो यही बात है तो इस मनुष्य को चिट्ठी ले कर आप ने कुसुमपुर क्यों भेजा था ?

राक्षस— (देख कर) अरे ! सिद्धार्थक है ? भद्र ! यह क्या ?

सिद्धार्थक—(भय और लज्जा नाट्य कर के) अमात्य; हम को क्षमा कीजिये। अमात्य ! हमारा कुछ भी दोष नहीं है। मार खाते खाते हम आपका रहस्य छिपा न सके।

राक्षस—भद्र ! वह कौनसा रहस्य है यह हम को नहीं समझ पड़ता।

सिद्धार्थक—निवेदन करते हैं, मार खाने से ('इतना ही कह लजा से नीचा मुँह कर लेता है)

मलयकेतु—भागुरायण स्वामी के सामने लज्जा और भय से यह कुछ न कह सकेगा; इससे तुम सब बात आर्य्य से कहो।

भागुरायण—कुमार की जो आज्ञा। अमात्य ! यह कहता है अमात्य राक्षस ने हम को चिट्ठी देकर और संदेशा कह कर चन्द्रगुप्त के पास भेजा है।

राक्षस—भद्र सिद्धार्थक ! क्या यह सत्य है ?

सिद्धार्थक—(लज्जा नाट्य करके) मार खाने के डर से मैंने कह दिया।

राक्षस—कुमार ! मार के डर से लोग क्या नहीं कह देते ?

मलयकेतु—भागुरायण ! चिट्ठी दिखला दो और संदेशा वह मुँह से कहेगा।

भागुरायण—(चिट्ठी खोल कर 'स्वस्ति कहीं से कोई किसी को' इत्यादि पढ़ता है)

राक्षस—कुमार ! कुमार ! यह सब शत्रु का प्रयोग है।

मलयकेतु—लेख अशून्य करने को आर्य्य ने जो आभरण भेजे हैं वह शत्रु कैसे भेजेगा। (आभरण दिखलाता है)

राक्षस—कुमार! यह मैंने किसी को नहीं भेजा। कुमार ने यह मुझ को दिया, और मैंने प्रसन्न होकर सिद्धार्थक को दिया।

भागुरायण—अमात्य! ऐसे उत्तम आभरणों का विशेष कर अपने अङ्ग से उतार कर कुमार की दी हुई वस्तु का यह पात्र है?

मलयकेतु—और संदेश भी बड़े प्रामाणिक सिद्धार्थक से सुनना यह आर्य्य ने लिखा है।

राक्षस—कैसा संदेश और कैसी चिट्ठी? यह हमारा कुछ नहीं है।

मलयकेतु—तो मुहर किसकी है?

राक्षस—धूर्त्त लोग कपटमुद्रा भी बना लेते हैं।

भागुरायण—कुमार! अमात्य सच कहते हैं। सिद्धार्थक! चिट्ठी किस की लिखी है?

सिद्धार्थक—(राक्षस का मुँह देखकर चुपचाप रह जाता है)

भागुरायण—चुप मत रहो। जी कड़ा करके कहो।

सिद्धार्थक—आर्य्य! शकटदास ने।

राक्षस—शकटदास ने लिखा तो मानो मैंने ही लिखा।

मलयकेतु—विजये! शकटदास को हम देखना चाहते हैं।

भागुरायण—(आप ही आप) आर्य्य चाणक्य के लोग बिना निश्चय समझे हुए कोई बात नहीं करते। जो शकटदास आकर यह चिट्ठी किस प्रकार लिखी गई है यह सब वृत्तान्त कह देगा तो मलयकेतु फिर

बहक जायगा। (प्रकाश) कुमार! शकटदास अमात्य राक्षस के सामने लिखा होगा तो भी न स्वीकार करेंगे; इससे उनका कोई और लेख मँगा कर अक्षर मिला लिये जाँय।

मलयकेतु—विजये! ऐसा ही करो।

भागुरायण—और मुहर भी आवे।

मलयकेतु—हाँ, वह भी।

कंचुकी—जो आज्ञा (बाहर जाता है और मुहर और पत्र लेकर आता है) कुमार! यह शकटदास का लेख और मुहर है।

मलयकेतु (देख कर और अक्षर और मुहर की मिलान कर के) आर्य्य अक्षर तो मिलते हैं।

राक्षस (आप ही आप) अक्षर निस्सन्देह मिलते हैं, किन्तु शकटदास हमारा मित्र है, इस हिसाब से नहीं मिलते तो क्या शकटदास ही ने लिखा अथवा—

पुत्र दार की याद करि, स्वामि भक्ति तजि देत।
छोड़ि अचल जस को करत, चलधन सो जन हेत॥

या इसमे सन्देह ही क्या है?

मुद्रा ताके हाथ की, सिद्धार्थक हू मित्र।
ताही के कर को लिख्यौ पत्रहु साधन चित्र॥
मिलि कै शत्रुन सों करन, भेद भूलि निज धर्म।
स्वामि विमुख शकटहि कियो, निश्चय यह खल कर्म॥

मलयकेतु—आर्य्य! श्रीमान ने तीन आभरण भेजे, सो मिले, यह जो आपने लिखा है सो उसी मे का एक आभरण यह भी है? (राक्षस के पहने हुये आभरण को देखकर

आप ही आप) क्या यह पिता के पहने हुए आभरण हैं ? (प्रकाश) आर्य्य ! यह आभरण आपने कहाँ से पाया ?

राक्षस—जौहरी से मोल लिया था।

मलयकेतु—विजये ! तुम इन आभरणों को पहचानती हो ?

प्रतिहारी—(देखकर आँसू भर के) कुमार ! हम सुगृहीत नामधेय महाराज पर्व्वतेश्वर के पहिरने के आभरणों को न पहचानेंगी ?

मलयकेतु—(आँखों में आँसू भर के)

भूषण प्रिय ! भूषण सबै, कुल भूषण ! तुम अङ्ग।
तुव मुख ढिग इमि सोहतो, जिमि ससि तारन सङ्ग ॥

राक्षस—(आप ही आप ये पर्व्वतेश्वर के पहिने हुए आभरण हैं ? (प्रकाश) जाना, यह भी निश्चय चाणक्य के भेजे हुए जौहरियों ने ही बेचा है।

मलयकेतु—आर्य्य ! पिता के पहने हुए आभरण और फिर चन्द्रगुप्त के हाथ पड़े हुए जौहरी बेचें, यह कभी हो नहीं सकता। अथवा हो सकता है।

अधिक लाभ के लोभ सों, क्रूर ! त्यागि सब नेह।
बदले इन आभरण के तुम बेच्यौ मम देह ॥

राक्षस—(आप ही आप) अरे ! यह दाव तो पूरा बैठ गया।

मम लेख नहिं यह किमि कहैं मुद्रा छपी जब हाथ की।
विश्वास होत न सकट तजि है प्रीति कबहूँ हाथ की ॥
पुनि बेचि है नृप चन्द भूषण कौन यह पतियाइ है।
तासों भलो अब मौन रहनो कथन तें पति जाइ है ॥

मलयकेतु—आर्य्य हम यह पूछते हैं।

राक्षस—जो आर्य्य हो उससे पूछो, हम अब पापकारी अनार्य हो गए हैं।

मलयकेतु—स्वामि पुत्र तुव मौर्य हम, मित्र पुत्र सह हेत।
पै हो उत वाका दियो, इत तुम हम को देत ॥
सचिवहु भे उत, दास ही, इत तुम स्वामी आप।
कौन अधिक फिर लोभ जो, तुम कीनों यह पाप ॥

राक्षस—(आँखों में आँसू भर के) कुमार! इसका निर्णय तो आप ही ने कर दिया—

स्वामि पुत्र मम मौर्य्य तुम, मित्र पुत्र सह हेत।
पैहैं उत वाको दियो, इत हम तुम कों देत ॥
सचिवहु भे उत दास हीं, इत हम स्वामी आप।
कौन अधिक फिर लोभ जो, हम कीनो यह पाप ॥

मलयकेतु—(चिट्ठी इत्यादि दिखला कर) यह सब क्या है ?

राक्षस—(आँखों में आँसू भर कर के) यह सब चाणक्य ने नहीं किया दैव ने किया।

निज प्रभु सों करि नेह जे भृत्य समर्पत देह।
तिन सों अपुने सुत सरिस सदा निबाहत नेह ॥
ते गुण गाहक नृप सबै जिन मारे छन माहि।
ताही विधि को दोस यह औरन को कछु नाहिं ॥

मलयकेतु—(क्रोध पूर्वक) अनार्य! अब तक छल किए जाते हो कि यह सब दैव ने किया।

विष कन्या दे पितु हन्यौ, प्रथम प्रीति उपजाय।
अब रिपु सों मिलि हम सबन, बधन चहत ललचाय ॥

राक्षस—(दुःख से आप ही आप) हाँ! यह और जले पर नमक

है। (प्रगट कानों पर हाथ रख कर) नारायण ! देव पर्व्व-
तेश्वर का कोई अपराध हमने नहीं किया।

मलयकेतु—फिर पिता को किसने मारा ?

राक्षस—यह दैव से पूछो।

मलयकेतु—दैव से पूछें। जीवसिद्धि क्षपणक से न पूछें ?

राक्षस—(आप ही आप) क्या जीवसिद्ध भी चाणक्य का गुप्तचर
हैं! हाय! शत्रु ने हमारे हृदय पर भी अधिकार कर
लिया ?

मलयकेतु—(क्रोध से) शिखरसेन सेनापति से कहो कि राक्षस
से मिल कर चन्द्रगुप्त को प्रसन्न करने को पाँच राजे
जो हमारा बुरा चाहते हैं, उन में कौलूत चित्रवर्मा
मलयाधिपति सिंहनाद, और काश्मीराधीश पुष्कराक्ष
ये तीन हमारी भूमि की कामना रखते हैं, सो इनको
भूमि ही में गाड़ दे, और सिंधुराज सुषेण और पार-
सीकपति मेघाक्ष हमारी हाथी की सैना चाहते हैं सो
इनको हाथी के पैर के नीचे पिसवा दो ❀

पुरुष—जो कुमार की आज्ञा। (जाता है)

मलयकेतु—राक्षस ! हम मलयकेतु हैं, कुछ तुम से विश्वासघाती
राक्षस नहीं। †इससे तुम जाकर अच्छी तरह चन्द्र-
गुप्त का आश्रय करो।

❀यही बात ऐथीनिय लोगों ने दारा से कही थी। Wilson कहते हैं कि चाणक्य की आज्ञा से ये राजे सब कैद कर लिये थे, मारे नहीं गए थे।

†अर्थात् हम तुम्हारा प्राण नहीं मारते।

चन्द्रगुप्त चाणक्य सों मिलिए सुख सों आप
हम तीनहुँ को नासिहैं, जिमि त्रिवर्ग कहँ पाप × ॥

भागुरायण—कुमार! व्यर्थ अब कालक्षेप मत कीजिए। कुसुमपुर घेरने को हमारी सेना चढ़ चुकी है।

उड़िके तियगन गंड जुगल कह मलिन बनावति।
अलि कुलसे कल अलकन निज कन धवल छवावति
चपल तुरगखुर घात उठी घन घुमड़ि नवीनी।
सत्रु सीस पै धूरि परै गजमद सों भीनी॥

(अपने भृत्यों के साथ मलयकेतु जाता है।)

राक्षस—(घबड़ा कर) हाय! हाय! चित्रवर्मादिक साधु सब व्यर्थ मारे गए। हाय! राक्षस की सब चेष्टा शत्रु का नहीं, मित्रों ही के नाश करने की होती है। अब हम मन्दभाग्य क्या करें?

जाहिं तपोवन, पै न मन, शांत होत सह क्रोध।
प्रान देहिं? रिपु के जियत, यह नारिन को बोध॥
खींचि खड्ग कर पतंग सम, जाहिं अनल अरि पास।
पै या साहस होइ है, चन्दनदास बिनास॥

(सोचता हुआ जाता है)

पटाक्षेप।

× जैसे धर्म, अर्थ, काम को पाप नाश कर देता है।

इति पञ्चम अङ्क।

छठा अङ्क

स्थान—नगर के बाहर सड़क

(कपड़ा गहिना पहिने हुए सिद्धार्थक आता है)

सिद्धार्थक—

जलद नील तन जयति जय, केशव केशी काल।
जयति सुजन जन दृष्टि ससि, चन्द्रगुप्त नरपाल॥
जयति आर्य्य चाणक्य की, नीति सहज बल भौन।
बिनहीं साजे सैन नित, जीतत अरि कुल जौन॥

चलो आज पुराने मित्र समिद्धार्थक से भेंट करें। (घूम कर) अरे! मित्र समिद्धार्थक आप ही इधर आता है।

(समिद्धार्थक आता है।)

समिद्धार्थक—

मिटत ताप नहिं पान सों, होत उछाह विनास।
बिना मीत के सुख सबै, औरहु करत उदास॥

सुना है कि मलयकेतु के कटक से मित्र सिद्धार्थक आ गया है। उसी को खोजने को हम भी निकले हैं कि मिले तो बड़ा आनन्द हो। (आगे बढ़कर) अहा! सिद्धार्थक तो यहीं है। कहो मित्र! अच्छे तो हो?

सिद्धार्थक—अहा! मित्र! समिद्धार्थक आप ही आ गए। (बढ़कर) कहो मित्र! क्षेम कुशल तो है?

(दोनों गले से मिलते हैं ।)

समिद्धार्थक—भला ! यहाँ कुशल कहाँ कि तुम्हारे ऐसा मित्र बहुत दिन पीछे घर भी आया तो बिना मिले फिर चला गया ।

सिद्धार्थक—मित्र क्षमा करो मुझको देखते ही आर्य चाणक्य ने आज्ञा दी कि इस वृत्तान्त को अभी चन्द्रमा सदृश प्रकाशित शोभा वाले परम प्रिय महाराज प्रिय-दर्शन से जाकर कहो । मैं उसी समय महाराज के पास चला गया और उनसे निवेदन करके यह सब पुरस्कार पाकर तुमसे मिलने को तुम्हारे घर अभी जाता ही था ।

समिद्धार्थक—मित्र ! जो सुनने के योग्य हो तो; महाराज प्रिय-दर्शन से जो प्रिय वृत्तान्त कहा है वह हम भी सुनें।

सिद्धार्थक—मित्र ! तुमसे भी कोई बात छिपी है ! सुनो ! आर्य्य चाणक्य की नीति से मोहितमति होकर उस दुष्ट मलयकेतु ने राक्षस को दूर कर दिया और चित्र-वर्मादिक पाँचो प्रबल राजों को मरवा डाला यह देखते ही और सब राजे अपने प्राण और राज्य का संशय समझ कर उसको छोड़ कर सैना सहित अपने-अपने देश चले गए। जब शत्रु ऐसी निर्बल अवस्था में हुआ, तो भद्रभट, पुरुषदत्त, हिंगुरात, बलगुप्त, राजसेन, भागुरायण, रोहिताक्ष, विजयवर्मा इत्यादि लोगों ने मलयकेतु को कैद कर लिया ।

समिद्धार्थक—मित्र ! लोग तो यह जानते हैं कि भद्रभट इत्यादि लोग महाराज चन्द्रश्री को छोड़कर मलयकेतु से

मिल गए; तो क्या कुकवियों के नाटक की भाँति इसके मुख में और तथा निर्वहण में और बात है* ?

सिद्धार्थक—वयस्य ! सुनो; जैसे दैव की गति नहीं जानी जाती वैसे ही आर्य्य चाणक्य की जिस नीति की भी गति नहीं जानी जाती उसको नमस्कार है।

समिद्धार्थक—हाँ ! कहो तब क्या हुआ ?

सिद्धार्थक—तब इधर से सब सामग्री लेकर आर्य्य चाणक्य बाहर निकले और विपक्ष के शेष राजाओं को निःशेष करके बर्बर लोगों की सामग्री लूट ली।

समिद्धार्थक—तो वह सब अब कहाँ हैं ?

सिद्धार्थक—वह देखो—

स्रवत गंडमद गरब गज, नदत मेघ अनुहार।
चाबुक भय चितवंत चपल, खड़े अस्व बहु द्वार॥

समिद्धार्थक—अच्छा, यह सब जाने दो। यह कहो कि सब लोगो के सामने इतना अनादर पाकर फिर भी आर्य्य चाणक्य उसी मन्त्री के काम को क्यों करते हैं ?

सिद्धार्थक—मित्र ! तुम अब तक निरे सीधे साधे बने हो। अरे, अमात्य राक्षस भी आर्य्य चाणक्य की जिन चालों को नहीं समझ सकते उनको हम तुम क्या समझेंगे।

समिद्धार्थक—वयस्य ! अमात्य राक्षस अब कहाँ है ?

सिद्धार्थक—उस प्रलय कोलाहल के बढ़ने के समय मलयकेतु की सैना से निकल कर उन्दुर नामक चर के साथ कुसुम-

---

* अर्थात् नाटक की उत्तमता यही है कि जिस वर्णन; नीति और रस से आरम्भ हो वैसे ही समाप्त हो, यह नहीं पहिले कुछ, पीछे कुछ।

पुर ही की ओर वह आते हैं, यह आर्य्य चाणक्य को समाचार मिला है।

समिद्धार्थक—मित्र ! नन्दराज के फिर स्थापन की प्रतिज्ञा करके स्वनाम तुल्य पराक्रम अमात्य राक्षस, उस काम को पूरा किए विना फिर कैसे कुसुमपुर आते है ?

सिद्धार्थक—हम सोचते हैं कि चन्दनदास के स्नेह से।

समिद्धार्थक—ठीक है, चन्दनदास के स्नेह ही से। किन्तु तुम सोचते हो कि चन्दनदास के प्राण बचेंगे ?

सिद्धार्थक—कहाँ उस दीन के प्राण बचेंगे ? हमी दोनों को वध-स्थान मे लेजाकर उसको मारना पड़ेगा।

समिद्धार्थक—(क्रोध से) क्या आर्य्य चाणक्य के पास कोई घातक नहीं है कि ऐसा नीच काम हम लोग करें।

सिद्धार्थक—मित्र ! ऐसा कौन है जिसको इस जीवलोक में रहना हो और वह आर्य्य चाणक्य की आज्ञा न माने ? चलो, हम लोग चांडाल का वेष बनाकर चन्दनदास को वधस्थान मे ले चलें।

(दोनों जाते हैं)

इति प्रवेशक।

बाहरी प्रान्त मे प्राचीन बारी

(फाँसी हाथ में लिए हुए एक पुरुष आता है)

पुरुष—षट गुन सुदृढ़ गुथी मुख फाँसी।
जय उपाय परिपाटी गाँसी॥

रिपु बन्धन मैं पटु प्रति पोरी।
जय चानक्य नीति की डोरी ॥

आर्य चाणक्य के चर उन्दुर ने इसी स्थान मे मुझको अमात्य राक्षस से मिलने को कहा है। (देखकर) यह अमात्य राक्षस सब अङ्ग छिपाये हुए आते हैं। तब तक इस पुरानी बारी मे छिप कर हम देखें, यह कहाँ ठहरते है। (छिप कर बैठता है)

(सब अङ्ग छिपाये हुए राक्षस आता है)

राक्षस—(आँखों मे आँसू भर कर) हाय! बड़े कष्ट की बात है।

आश्रय बिनसे और पै, जिमि कुलटा तिय जाय।
तजि तिमि नन्दहि चचला, चन्द्रहि लपटी धाय ॥
देखा देखी प्रजहु सब, कीनो ता अनुगौन।
तजि कै निज नृप नेह सब कियो कुसुमपुर भौन ॥
होइ बिफल उद्योग मै, तजि कै कारज भार।
आप्त मित्र हू थकि रहे, सिर बिनु जिमि अहि छार ॥
तजि कै निज पति भुवनपति, सुकुल जात नृप नन्द।
श्री वृषली गइ वृषल ढिग, सील त्यागि करि छन्द ॥
जाइ तहाँ थिर ह्वै रही, निज गुन सहज बिसारि।
बस न चलत जब बामविधि, सब कछु देत बिगारि ॥
नन्द मरे सैलेश्वरहि, देत चह्यौ हम राज।
सोऊ बिनसे तब कियो, ता सुत हित सो साज ॥
बिगर्यौ तौन प्रबन्ध हू, मिट्यौ मनोरथ मूल।
दोष कहा चानक्य को दैवहि भो प्रतिकूल ॥

वाहरे म्लेच्छ मलयकेतु की मूर्खता! जिसने इतना नहीं समझा कि—

मरे स्वामिहू नहिं तज्यौ, जिन निज नृप अनुराग।
लोभ छाड़ि दै प्रान निज, करी शत्रु सो लाग॥
सोई राक्षस शत्रु सों, मिलि है यह अँधेर।
इतनो सूझ्यो वाहि नहिं, दई दैव मति फेर॥

सो अब भी शत्रु के हाथ मे पड़के राक्षस बन में चला जायगा, पर चन्द्रगुप्त से सन्धि न करेगा। लोग झूठा कहे, यह अपयश हो, पर शत्रु की बात कौन सहेगा? (चारों ओर देख कर) हाँ! इसी प्रान्त मे देव नन्द रथ पर चढ़ कर फिरने आते थे।

इतहि देव अभ्यास हित, सर सिज धनु सँधान।
रचत रहे भुव चित्र सम, रथ सुचक्र परिखानि॥
जहँ नृपगन सँकित रहे, इत उत थमे लखात।
सोइ भुव ऊजर भई, दृगन लखी नहिं जात॥

हाय! यह मन्द भाग्य अब कहाँ जाय? (चारों ओर देख कर) चलो इस पुरानी बारी मे कुछ देर ठहर कर मित्र चन्दनदास का कुछ समाचार ले। (घूम कर आप ही आप) अहा! पुरुषो की भाग्य से उन्नति अवनति की भी क्या क्या गति होती है कोई नहीं जानता।

जिमि नव ससि कहँ सब लखत, निज २ करहि उठाय।
तिमि नृप सब हम को रहे, लखत अनन्द बढ़ाय॥
चाहत हे नृपगन सबै, जासु कृपा दृग कोर।
सो हम इत सँकित चलत, मानहुँ कोऊ चोर॥

वा जिसके प्रसाद से यह सब था, जब वही नहीं है तो यह होईगा। (देख कर) यह पुराना उद्यान कैसा भयानक हो रहा है।

नसे बिपुल नृप कुल सरिस, बड़े बड़े गृह जाल।
मित्र नास सों साधुजन, हिय सम सूखे ताल॥
तरुवर भे फलहीन जिमि, बिधि बिगरे सब रीति।
तृन सों लोपी भूमि जिमि, मति लहि मूढ़ कुनीति॥
तीछन परसु प्रहार सों, कटे सरोवर गात।
रोअत मिलि पिंडूक सम, ताके घाव लखात*॥
दुखी जानि निज मित्र कहँ अहि मन लेत उसास।
निज केंचुल मिस धरत हैं, फाहा तरु ब्रन पास॥
तरुगन को सूख्यौ हियो, छिदे कीट सों गात।
दुखी पत्र फल छाँह बिनु, मनु समान सब जात॥

तो तब तक हम इस शिला पर, जो भाग्यहीनो को सुलभ है, लेटें। (बैठ कर और कान दे कर सुन कर) अरे! यह शंख डंके से मिला हुआ नान्दी शब्द कहाँ हो रहा है ?

अति ही तीखन होन सों फोरत स्रोता कान।
जब न समायो घरन मे तब इत कियो पयान॥
सँख पटह धुनि सों मिल्यौ भारी मङ्गल नाद।
निकस्यौ मनहुँ दिगन्त की, दूरी देखन स्वाद॥

(कुछ सोच कर) हाँ, जाना। यह मलयकेतु के पकड़े जाने पर राजकुल ‡ (रुक कर) मौर्यकुल को आनन्द देने को हो रहा है।

---

* वृक्ष के खोंढ़रे मे से जो शब्द निकलता है वही मानो वृक्ष रोते हैं और उन वृक्षों पर पेड़की बोलती है वह मानों रोने मे वृक्षो का साथ देती है।

‡ जहाँ ऐसी उक्ति होती है वहाँ यह ध्वनि है कि मानो "पूर्व में जो कहा था वह ठीक है" रुक कर आग्रह से फिर कुछ और कह दिया।

(आँखों में आँसू भर कर) हाय ! बड़े दुःख की बात है।

मेरे बिनु अब जोति दल, सत्रु पाइ बल घोर।
मोहि सुनावन हेत ही, कीन्हों शब्द कठोर॥

पुरुष अब तो यह बैठे हैं तो अब आर्य चाणक्य की आज्ञा पूरी करें। (राक्षस की ओर न देख कर अपने गले में फाँसी लगाना चाहता है।)

राक्षस—(देख कर आप ही आप) अरे यह फाँसी क्यों लगाता है ? निश्चय कोई हमारा सा दुखिया है। जो हो पूछें तो सही (प्रकाश) भद्र यह क्या करते हो।

पुरुष—(रोकर) मित्रों के दुःख से दुखी होकर हमारे ऐसे मन्द-भाग्यों का जो कर्तव्य है।

राक्षस—(आप ही आप) पहले ही कहा था, कोई हमारा सा दुखिया है। (प्रकाश) भद्र* जो अति गुप्त वा किसी विशेष कार्य की बात न हो तो हम से कहो कि तुम क्यों प्राण त्याग करते हो ?

पुरुष—आर्य ! न तो गुप्त ही है न कोई बड़े काम की बात है, परन्तु मित्र के दुःख से मैं अब छिन भर भी ठहर नहीं सकता।

राक्षस—(आप ही आप दुख से) मित्र की विपत्ति में हम पराये लोगों की भाँति उदासीन होकर जो देर करते हैं मानो उसमें शीघ्रता करने की यह अपना दुःख कहने के बहाने शिक्षा देता है। (प्रकाश) भद्र ! जो रहस्य नहीं है तो हम सुनना चाहते हैं कि तुम्हारे दुःख का क्या कारण है ?

---

*यहां संस्कृत में व्यसनि ब्रह्मचारिन् सम्बोधन है।

पुरुष—आपको इसमें बड़ा ही हठ है तो कहना पड़ा। इस नगर मे जिष्णुदास नामक एक महाजन है।

राक्षस—(आप ही आप) वह तो चन्दनदास का बड़ा मित्र है।

पुरुष—वह हमारा प्यारा मित्र है।

राक्षस—(आप ही आप) कहता है कि वह हमारा प्यारा मित्र है। इस अति निकट संबंध से इसको चन्दनदास का वृत्तान्त ज्ञात होगा।

पुरुष—(रोकर) "सो दीन जनों को सब धन देकर वह अब अग्निप्रवेश करने जाता है।" यह सुन कर हम यहाँ आये हैं कि "इस दुःख वार्त्ता सुनने के पूर्व ही अपना प्राण दे दें।

राक्षस—भद्र ! तुम्हारे मित्र के अग्निप्रवेश का कारण क्या है ?

कै तेहि रोग असाध्य भयो कोऊ,
जाको न औषध नाहिं निदान है।

पुरुष—नहीं आर्य्य!

राक्षस—कै विष अग्निहु सों बढ़ि कै,
नृपकोप महा फँसि त्यागत प्रान है।

पुरुष—राम राम ! चन्द्रगुप्त के राज्य में लोगों को प्राणहिंसा का भय कहाँ ?

राक्षस—कै कोउ सुन्दरी पै जिय देत,
लग्यो हिय माँहि वियोग को बान है।

पुरुष—राम राम ! महाजन लोगों की यह चाल नहीं, विशेष कर के साधु जिष्णुदास की।

राक्षस—तौ कहँ मित्रहि को दुख वाहू के,
नास को हेतु तुम्हारे समान है।

पुरुष—हाँ, आर्य्य ।

राक्षस—(घबड़ा कर आप ही आप) अरे, इस के मित्र का प्रिय मित्र तो चन्दनदास ही है और यह कहता है कि सुहृद् विनाश ही उस के विनाश का हेतु है, इससे मित्र के स्नेह से मेरा चित्त बहुत ही घबड़ाता है। (प्रकाश) भद्र ! तुम्हारे मित्र का चरित्र हम सविस्तार सुना चाहते हैं।

पुरुष—आर्य्य ! अब मैं किसी प्रकार से मरने में विलम्ब नहीं कर सकता।

राक्षस—यह वृत्तान्त तो अवश्य सुनने के योग्य है, इससे कहो।

पुरुष—क्या करें। आप ऐसा हठ करते हैं तो सुनिए।

राक्षस—हाँ ! जी लगाकर सुनते हैं, कहो।

पुरुष—आपने सुना ही होगा कि इस नगर मे प्रसिद्ध जौहरी सेठ चन्दनदास हैं।

राक्षस—(दुःख से आप ही आप) दैव ने हमारे विनाश का द्वार अब खोल दिया। हृदय ! स्थिर हो, अभी न जानें क्या क्या कष्ट तुम को सुनना होगा। (प्रकाश) भद्र ! हमने भी सुना है कि वह साधु अत्यन्त मित्र—वत्सल हैं।

पुरुष—वह जिष्णुदास के अत्यन्त मित्र हैं।

राक्षस—(आप ही आप) यह सब हृदय के हेतु शोक का वज्र-पात हैं। (प्रकाश) हाँ, आगे।

पुरुष—सो जिष्णुदास ने मित्र की भाँति चन्द्रगुप्त से बहुत विनय किया।

राक्षस—क्या क्या ?

पुरुष—कि देव ! हमारे घर में जो कुछ कुटुम्ब पालन का द्रव्य है। आप सब ले लें, पर हमारे मित्र चन्दनदास को छोड़ दें।

राक्षस—(आप ही आप) वाह जिष्णुदास ! तुम धन्य हो ! तुम ने मित्र स्नेह का निर्वाह किया।

जो धन के हित नारी तज पति पूत तजै पितु सीलहिं खोई।
भाई सो भाई लरें रिपु से पुनि मित्रता मित्र तजै दुख जोई॥
ता धन कों बनियाँह्वै गिन्यौ न दियो दुख मीत सो आरत होई।
स्वारथ अर्थ तुम्हारोइ है तुमरे सम और न या जग कोई॥

(प्रकाश) इस बात पर मौर्य्य ने क्या कहा ?

पुरुष—आर्य्य ! इस पर चन्द्रगुप्त ने उससे कहा कि जिष्णुदास ! हम ने धन के हेतु चन्दनदास को नहीं दण्ड दिया है। इसने अमात्य राक्षस का कुटुम्ब अपने घर में छिपाया, बहुत माँगने पर भी न दिया। अब भी जो यह दे दे तो छूट जाय, नहीं तो इसको प्राण-दण्ड होगा तभी हमारा क्रोध शान्त होगा और दूसरे लोगों को भी इससे डर होगा। यह कह उस को वधस्थान में भेज दिया। जिष्णुदास ने कहा कि 'हम कान से अपने मित्र का अमंगल सुनने के पहिले मर जायँ तो अच्छी बात है" और अग्नि में प्रवेश करने को वन मे चले गए हमने भी इसी हेतु कि उनका मरण न सुनें, यह निश्चय किया कि फाँसी लगा कर मर जायँ और इसी हेतु यहाँ आए हैं।

राक्षस—(घबड़ा कर) अभी चन्दन दास को मारा तो नहीं ?

पुरुष—आर्य्य ? अभी नहीं मारा है, बारम्बार अब भी उनसे अमात्य राक्षस का कुटुम्ब माँगते हैं, और वह मित्र-

वत्सलता से नहीं देते इसी में इतना विलम्ब हुआ।

राक्षस—सहर्ष (आप ही आप) वाह मित्र चन्दनदास ? वाह ? धन्य ! धन्य !

मित्र परोच्छहु में कियो, सरनागत प्रतिपाल।
निरमल जस सिवि * सो लियो, तुम या काल कराल॥

(प्रकाश) भद्र ! तुम शीघ्र जाकर जिष्णुदास को जलने से रोको ; हम जाकर अभी चन्दनदास को छुड़ाते हैं।

पुरुष—आर्य ! आप किस उपाय से चन्दनदास को छुड़ाइएगा ?

राक्षस—(आतङ्क से खड्ग मियान से खींच कर) इस दुःख में एकान्त मित्र निष्कृस कृपाण से।

---

* शिवि ने शरणागत कपोत के हेतु अपना शरीर दे दिया था। राजा शिवि जब ६२ यज्ञ कर चुके और आगे फिर प्रारम्भ किया तब इन्द्र को भय हुआ कि अब मेरा पद लेने में आठ यज्ञ बाकी हैं उसने अग्नि को कपोत बनाया और आप बाज बन उसके मारने को चला, तब वह भागा हुआ राजा की शरण में गया। राजा ने उसका वचन सुन बाज को देख यज्ञशाला में अपनी गोदी में छिपा लिया और बाज को निवारण किया, बाज बोला कि महाराज ! आप यहाँ यह क्या अनर्थ करते हैं कि मेरा आहार छीन लिया ? मैं भूख से शरीर को छोड़ आपको पाप भागी करूँगा। तब राजा ने कहा कि उसे तो नहीं देंगे, इसके पलटे में जो मागेगा सो देंगे, पश्चात् इसके प्रति उत्तर मे यह बात ठहरी कि राजा कबूतर के तुल्य तौल के शरीर का मास दे तब हम कबूतर को छोड़ देवें। इस बात पर राजा ने प्रसन्न हो तुला पर एक ओर कपोत को बैठाया दूसरी ओर अपने शरीर का मास काट कर चढ़ाने लगे, परन्तु सब शरीर का मास काट-काट के चढाय दिया तो भी कबूतर के समान नहीं हुआ। तब राजा ने गले पर खड्ग चलाया त्यों ही विष्णु ने हाथ पकड़ अपने लोक को भेज दिया।

समर साध तन पुलकित नित साथी मम कर को।
रन महँ बारहिं बार परिछ्यो जिन बल पर को॥
बिगत जलद नभ नील खड्ग यह रोस बढ़ावत।
मीत कष्ट सों दुखिहु मोहि रनहित उमगावत॥

पुरुष—सेठ चन्दनदास के प्राण बचने का उपाय मैंने सुना किन्तु ऐसे टेढ़े समय मे इसका परिणाम क्या होगा, यह मैं नहीं कह सकता (राक्षस को देख कर पैर पर गिरता है) आर्य ? क्या सुगृहीत नामधेय अमात्य राक्षस आपही है ? यह मेरा संदेह आप दूर कीजिए।

राक्षस—भर्तृकुल विनाश से दुखी और मित्र के नाश का कारण यथार्थ नामा अनार्य राक्षस मैं ही हूँ।

पुरुष—(फिर पैर पर गिरता है) धन्य है! बड़ा ही आनन्द हुआ। आपने हमको आज कृतकृत्य किया।

राक्षस—भद्र! उठो। देर करने की कोई आवश्यकता नहीं जिष्णुदास से कहो कि राक्षस चन्दनदास को अभी छुड़ाता है।

(खड्ग खींचे हुए 'समर साध' इत्यादि पढ़ता हुआ उधर उधर टहलता है)

पुरुष—(पैर पर गिर कर) अमात्यचरण! प्रसन्न हों। मैं यह बिनती करता हूँ कि चन्द्रगुप्त दुष्ट ने-पहले शकटदास के बध की आज्ञा दी थी। फिर न जाने कौन शकटदास को छुड़ा कर उसको कहीं परदेश में भगा ले गया। आर्य शकटदास के वध में धोखा खाने से चन्द्रगुप्त ने क्रोध कर के प्रमादी समझ कर उन वधिकों ही को मार डाला। तबसे वधिक जिस किसी को बध स्थान में ले जाते है और मार्ग मे किसी को शस्त्र खींचे हुए

देखते हैं तो छुड़ाले जाने के भयसे अपराधीको बीचही मे तुरन्त मार डालते हैं। इससे शस्त्र खींचे हुए आप के वहाँ जाने से चन्दनदास की मृत्यु में और भी शीघ्रता होगी (जाता है)

राक्षस—(आप ही आप) उस चाणक्य बटु का नीतिमार्ग कुछ समझ नहीं पड़ता, क्योंकि—

सकट बच्यो जो ता कहे, तो क्यों घातक घात।
जाल भयो का खेल मैं, कछु समझ्यो नहिं जात॥

(सोच कर) नहिं शस्त्र को यह काल यासों मीत जीवन जाइ है।
जो नीति सोचै या समय तो व्यर्थ समय नसाइ है॥
चुप रहनहू नहिं जोग जब मम हित बिपति चन्दन परयौ।
तासों बचावन प्रियहि अब हम देह निज विक्रम करयौ॥

(तलवार फेक कर जाता है)

छठा अंक समाप्त हुआ।

——:❀:——

सप्तम अंक

स्थान—सूली देने का मसान

(पहिला चॉडाल आता है)

चॉडाल—हटो लोगो हटो, दूर हो भाइयो, दूर हो जो अपना प्राण, धन और कुल बचाना होतो दूर हो। राजा का विरोध यत्नपूर्वक छोड़ो।

करि कै पथ्य विरोध इक, रोगी त्यागत प्रान।
पै विरोध नृप सों किए, नसत सकुल नर जान॥

जो न मानों तो इस राजा के विरोधी को देखो जो स्त्री, पुत्र समेत यहाँ सूली देने को लाया जाता है (ऊपर देख कर) क्या कहा ? कि इस चन्दनदास के छूटने का कुछ उपाय भी है ? भला इस बिचारे के छूटने का कौन उपाय है ? पर हाँ जो यह मंत्री राक्षस का कुटुम्ब दे दे तो छूट जाय। (फिर ऊपर देख कर) क्या कहा कि यह शरणागतवत्सल प्राण देगा पर यह बुरा कर्म्म न करैगा ? तो फिर इसकी बुरी गति होगी, क्योंकि बचने का तो वही एक उपाय है।

(कंधे पर सूली रक्खे मृत्यु का कपडा पहिने चन्दनदास उसकी स्त्री और पुत्र और दूसरा चॉडाल आते हैं।)

स्त्री—हाय हाय ! जो हम लोग नित्य अपनी बात बिगड़ने के डर से फूॅक फूॅक कर पैर रखते थे उन्हीं हम लोगों की चोरों की भाँति मृत्यु होती है। काल देवता को

नमस्कार है, जिस को मित्र उदासीन सभी एक से हैं क्योंकि—

छोड़ि माँस भख मरन भय, जियहिं खाइ तृन घास।
तिन गरीब मृग को करहिं निरदर्य ब्याधा नाश॥

(चारों ओर देखकर)

अरे भाई जिष्णुदास ! मेरी बात का उत्तर क्यों नहीं देते ? हाय ऐसे समय कौन ठहर सकता है ?

चं० दा०—(आँसू भर कर) हाय ! यह मेरे सब मित्र बिचारे कुछ नहीं कर सकते, केवल रोते हैं और अपने को अकर्मण्य समझ शोक से सूखा सूखा मुँह किए आँसू भरी आँखों से एक टक मेरी ही ओर देखते चले आते हैं।

दोनों चाँडाल—अजी चन्दनदास ! अब तुम फाँसी के स्थान पर आ चुके इससे कुटुम्ब को बिदा करो।

चं० दा०—(स्त्री से) अब तुम पुत्र को लेकर जाओ, क्योंकि आगे तुम्हारे जाने की भूमि नहीं है।

स्त्री—ऐसे समय में तो हम लोगों को बिदा करना उचित ही है क्योंकि आप परलोक में जाते है, कुछ परदेश नहीं जाते (रोती है)।

चं० दा०—सुनो ! मै कुछ अपने दोष से नहीं मारा जाता, एक मित्र के हेतु मेरे प्राण जाते हैं, तो इस हर्ष के स्थान पर क्यों रोती हो ?

स्त्री—नाथ ! जो यह बात है तो कुटुम्ब को क्यों बिदा करते हो

चं० दा०—तो फिर तुम क्या कहती हो ?

स्त्री—(आँसू भर कर) नाथ ! कृपा करके मुझे भी साथ ले चलो।

चंदनदास—हा ! यह तुम कैसी बात कहती हो ? अरे ! तुम इस बालक का मुँह देखो और इसकी रक्षा करो, क्योंकि यह बिचारा कुछ भी लोकव्यवहार नहीं जानता, यह किसका मुँह देख कर जीयेगा ?

स्त्री—इसकी रक्षा कुलदेवी करेगी। बेटा ! अब पिता फिर न मिलेंगे इससे मिल कर प्रणाम कर ले।

बालक—(पैरों पर गिर के) पिता ! मैं आपके बिना क्या करूँगा

चन्दनदास—बेटा ! जहाँ चाणक्य न हो वहाँ बसना।

दोनो चांडाल—(सूली खडी कर के) अजी चन्दनदास ! देखो, सूली खड़ी हुई, अब सावधान हो जाओ।

स्त्री—(रो कर) लोगो, बचाओ, अरे ! कोई बचाओ।

चन्दनदास—भाइयो तनिक ठहरो (स्त्री से) अरे ! अब तुम रो रोकर क्या नन्दो को स्वर्ग से बुला लोगी ? अब वे लोग यहाँ नहीं हैं जो स्त्रियों पर सर्वथा दया रखते थे

१ चाँडाल—अरे वेणुवेत्रक ! पकड़ इस चन्दनदास को घर वाले आप ही रो पीट कर चले जायेंगे।

२ चाँडाल—अच्छा बज्रलोकम्, मैं पकड़ता हूँ।

चन्दनदास—भाइयो ! तनिक ठहरो, मैं अपने लड़के से मिल लूँ (लड़के को गले लगाकर और माथा सूँघ कर) बेटा ! मरना तो था ही पर एक मित्र के हेतु मरते हैं इससे सोच मत कर।

पुत्र—पिता ! क्या हमारे कुल के लोग ऐसा ही करते आये हैं ? (पैर पर गिर पड़ता है।)

२ चांडाल—पकड़ रे बज्रलोमक ! (दोनों चन्दनदास को पकड़ते है)

स्त्री—लोगो बचाओ रे, बचाओ ।

(वेग से राक्षस आता है)

राक्षस—डरो मत, डरो मत, सुनो सुनो सेनापति ! चन्दनदास को मत मारना क्योंकि—

नसत स्वामिकुल जिन लख्यौं, निज चख शत्रु समान ।
मित्र दुख हू मै धरथौ, निलज होइ जिन प्रान ॥
तुम सो हारि बिगारि सब, कढ़ी न जाकी सॉस ।
ता राक्षस के कण्ठ में, डारहु यह जम फॉस ॥

चन्दनदास—(देख कर और ऑखों मे ऑसू भर कर) अमात्य ! यह क्या करते हो ?

राक्षस—मित्र, तुम्हारे सच्चरित्र का एक छोटा सा अनुकरण ।

चन्दनदास—अमात्य मेरा किया तो सब निष्फल होगया, पर आपने ऐसे समय यह साहस अनुचित किया ।

राक्षस—मित्र चन्दनदास ! उराहना मत दो, सभी स्वार्थी हैं । (चाडाल से) अजी ! तुम उस दुष्ट चाणक्य से कहो ।

दोनों चांडाल—क्या कहें ?

राक्षस—

जिन कलि मैं हू मित्र हित तृन सम छोड़े प्रान ।
जाके जस रवि सामुहे, शिवि जस दीप समान ॥
जाको अति निर्मल चरित, दया आदि नित जानि ।
बौधहु सब लज्जित भये, परम शुद्ध जेहि मानि ॥
ता पूजा के पात्र को, मारत तू धरि पाप ।
जाके हितु सो सत्रु तुव, आयो इत मे आप ॥

१ चांडाल—अरे वेणुवेत्रक ! तू चन्दनदास को पकड़ कर इस मसान के पेड़ की छाया मे बैठ, तब तक मन्त्री चाणक्य को मै समाचार दूँ कि अमात्य राक्षस पकड़ा गया ।

२ चांडाल—अच्छा रे बज्रलोमक ! (चन्दनदास स्त्री, बालक, और सूली को लेकर जाता है) ।

१ चांडाल—(राक्षस को लेकर घूम कर) अरे ! यहाँ पर कौन है ? नन्दकुल सेनासञ्चय के चूर्ण करने वाले वज्र से, वैसे ही मौर्य्यकुल मे लक्ष्मी और धर्म स्थापना करने वाले आर्य्य चाणक्य से कहो ।

राक्षस—(आप ही आप) हाय ! यह भी राक्षस को सुनना लिखा था ।

१ चाण्डाल—कि आपकी नीति ने जिसकी बुद्धि को घेर लिया है, वह अमात्य राक्षस पकड़ा गया ।

(परदे मे सब शरीर छिपाये केवल मुँह खोले चाणक्य आता है)

चाणक्य—अरे कहो कहो ।

किन निज बसनहि में धरी, कठिन अगिनि की ज्वाल ?
रोकी किन गति वायु की डोरनि ही के जाल ?
किन गजपति मर्दन प्रबल, सिंह पींजरा दीन ?
किन केवल निज बाहु बल, पार समुद्रहि कीन ?

१ चाण्डाल—परमनीतिनिपुण आपही ने तो ।

चाणक्य—अजी ! ऐसा मत कहो, वरन् "नन्दकुलद्वेषी दैव ने" यह कहो ।

राक्षस—(देख कर आप ही आप) अरे ! क्या यही दुरात्मा वा महात्मा कौटिल्य है ।

सागर जिमि बहु रत्नमय, तिमि सब गुण की खानि।
तोष होत नहिं देखि गुण; बैरी हू निज जानि॥

चाणक्य—(देख कर) अरे! यही अमात्य राक्षस है?
जिस महात्मा ने—

बहु दुःख सों सोचत सदा, जागत रैन विहाय।
मेरी मति अरु चन्द्र की, सैनहि दई थकाय॥

(परदे से बाहर निकल कर) अजी अजी अमात्य राक्षस! मैं विष्णुगुप्त आपको दण्डवत करता हूँ। (पैर छूता है)

राक्षस—(आप ही आप) अब मुझे अमात्य कहना तो केवल मुंह चिढ़ाना है। (प्रगट) अजी विष्णुगुप्त! मैं चांडालो से छू गया हूँ इससे मुझे मत छुओ।

चाणक्य—अमात्य राक्षस! वह श्वपाक नहीं है, वह आपका जाना सुना सिद्धार्थक नामी राजपुरुष है और दूसरा भी समिद्धार्थक नामी राजपुरुष ही है; और इन्हीं दोनो द्वारा विश्वास उत्पन्न करके उस दिन शकटदास को धोखा देकर मैंने वह पत्र लिखवाया था।

राक्षस—(आप ही आप) अहा! बहुत अच्छा हुआ कि मेरा शकटदास पर से सन्देह दूर हो गया।

चाणक्य—बहुत कहाँ तक कहूँ—

वे सब भद्रभटादि वह, सिद्धार्थक वह लेख।
वह भदन्त वह भूषणहु, वह नट आरत भेख॥
वह दुख चन्दनदास को, जो कछु दियो दिखाय।
सो सब मम (लज्जा से कुछ सकुच कर)
सो सब राजा चन्द्रको, तुमसो मिलन उपाय॥

देखिए, यह राजा भी आपसे मिलने आप ही आते हैं।

राक्षस—(आप ही आप) अब क्या करें (प्रगट) हाँ ! मैं देख रहा हूँ।

(सेवकों के सङ्ग राजा आता है)

राजा—(आप ही आप) गुरूजी ने बिना युद्ध ही दुर्जय शत्रु का कुल जीत लिया इसमे कोई सन्देह नहीं, मैं तो बड़ा लज्जित हो रहा हूँ, क्योंकि—

ह्वै विनु काम लजाय करि, नीचो मुख भरि सोक।
सोवत सदा निपङ्ग में, मम बानन के थोक॥
सोवहिं धनुष उतार हम, जदपि सकहि जग जीत।
जा गुरु के जागत सदा, नीति निपुण गत भीति॥

(चाणक्य के पास जाकर) आर्य्य ! चन्द्रगुप्त प्रणाम करता है।

चाणक्य—वृषल ! अब सब असीस सच्ची हुई इससे इन पूज्य अमात्य राक्षस को नमस्कार करो, यह तुम्हारे पिता के सब मन्त्रियों मे मुख्य हैं।

राक्षस—(आप ही आप) लगाया न इसने सम्बन्ध !

राजा—(राक्षस के पास जाकर) आर्य्य ! चन्द्रगुप्त प्रणाम करता है।

राक्षस—(देख कर आप ही आप) अहा ! यही चन्द्रगुप्त है !

होनहार जाको उदय, बालपने ही जोइ।
राज लह्यौ जिन बाल गज, जूथाधिप सम होय॥

(प्रगट) महाराज ! जय हो।

राजा—आर्य्य !

तुम्हरे आछत बहुरि गुरु, जागत नीति प्रवीन।
कहहु कहा या जगत में, जाहि न जय हम कीन॥

राक्षस—(आप ही आप) देखो यह चाणक्य का सिखाया पढ़ाया मुझसे कैसी सेवकों की सी बात करता है! नहीं नहीं, यह आप ही विनीति है। अहा! देखो, चन्द्रगुप्त पर डाह के बदले उलटा अनुराग होता है। चाणक्य सब स्थान पर यशस्वी है क्योंकि—

पाइ स्वामि सतपात्र जो, मन्त्री मूरख होइ।
तोहू पावे लाभ जस, इत तौ पण्डित दोइ॥
मूरख स्वामी लहि गिरै, चतुर सचिव हू हारि।
नदी तीर तरु जिमि नसत, जारनहौ लहि वारि॥

चाणक्य—क्यों अमात्य राक्षस! आप क्या चन्दनदास के प्राण बचाया चाहते हैं।

राक्षस—इसमें क्या सन्देह है?

चाणक्य—पर अमात्य! आप शस्त्र ग्रहण नहीं करते इससे सन्देह होता है कि आपने अभी राजा पर अनुग्रह नहीं किया, इससे जो सच ही चन्दनदास के प्राण बचाया चाहते हो तो यह शस्त्र लीजिये।

राक्षस—सुनो विष्णुगुप्त! ऐसा कभी नहीं हो सकता, क्योंकि हम लोग इस योग्य नहीं; विशेष कर के जब तक तुम शस्त्र ग्रहण किए हो तब तक हमारे शस्त्र ग्रहण करने का क्या काम है।

चाणक्य—भला अमात्य! आपने यह कहाँ से निकाला कि हम योग्य हैं और आप अयोग्य हैं? क्योंकि देखिये—

रहत लगामहि कसे अश्व की पीठ न छोड़त।
खान पान असनान भोग तजि मुख नहिं मोड़त॥
छूटे सब सुख साज नींद नहिं आवत नयनन।
निसि दिन चौंकत रहत वीर सब भय धरि निज मन॥

वह हौदन सों सब छन कस्यो नृप गजगन अवरेखिए।
रिपुदर्प्प दूर कर अति प्रबल निज महाप्रबल देखिए॥
वा इन बातों से क्या ? आपके शस्त्र ग्रहण किए बिना तो चन्दनदास बचता भी नहीं।

राक्षस—(आप ही आप)

नन्द नेह छूट्यौ नहीं, दास भये अरि साथ।
ते तरु कैसे काटि हैं, जे पाले निज हाथ॥
कैसे करिहै मित्र पै, हम निज कर सों घात।
अहोभाग्य गति अति प्रबल मोहि कछु जानि न जात॥

(प्रकाश) अच्छा विष्णुगुप्त ! मँगाओ खड्ग "नमस्सर्व्व कार्य्यप्रतिपत्तिहेतवे सुहृत्स्नेहाय" देखो मैं उपस्थित हूँ।

चाणक्य—(राक्षस को खड्ग देकर हर्ष से) राजन् वृषल ! बधाई है बधाई है ! अब अमात्य राक्षस ने तुम पर अनुग्रह किया। अब तुम्हारी दिन दिन बढ़ती ही है।

राजा—यह सब आपकी कृपा का फल है।

(पुरुष आता है)

पुरुष—जय हो महाराज की, जय हो महाराज ! भद्रभट भागुरायणादिक मलयकेतु को हाथ पैर बाँध कर लाये हैं और द्वार पर खड़े हैं इसमें महाराज की क्या आज्ञा होती है।

चाणक्य—हाँ, सुना। अजी ! अमात्य राक्षस से निवेदन करो अब सब काम वही करेंगे।

राक्षस—(आप ही आप) कैसे अपने वश में करके मुझी से कहलाता है। क्या करें ? (प्रकाश) महाराज चन्द्रगुप्त

यह तो आप जानते ही हैं कि हम लोगों का मलकेतु का कुछ दिन तक सम्बन्ध रहा है। इससे उसके प्राण तो बचाने ही चाहिए।

राजा—(चाणक्य का मुँह देखता है)

चाणक्य—महाराज ! अमात्य राक्षस की पहिली बात तो सर्वथा माननी ही चाहिये (पुरुष से) अजी ! तुम भद्रभटादिकों से कह दो कि 'अमात्य राक्षस के कहने से महाराज चन्द्रगुप्त मलयकेतु को उसके पिता का राज्य देते हैं" उससे तुम लोग संग जाकर उसको राज पर बिठा आओ।

पुरुष—जो आज्ञा।

चाणक्य—अजी अभी ठहरो, सुनो ! विजयपाल दुर्गपाल से यह कह दो कि अमात्य राक्षस के शस्त्र ग्रहण से प्रसन्न हो कर महाराज चन्द्रगुप्त यह आज्ञा करते हैं कि चन्दन दास को सब नगरों का जगत्सेठ कर दो !"

पुरुष—जो आज्ञा (जाता है)

चाणक्य—चन्द्रगुप्त ! अब और मैं क्या तुम्हारा प्रिय करूं ?

राजा—इससे बढ़ कर और क्या भला होगा ?

मैत्री राक्षस सों भई, मिल्यौ अकंटक राज।
नन्द नसे सब अब कहा, यासों बढ़ि सुखसाज॥

चाणक्य—(प्रतिहारी से) विजये दुर्गपाल ! विजयपाल से कहो कि अमात्य राक्षस के मेल से प्रसन्न होकर महाराज चन्द्रगुप्त आज्ञा करते हैं कि हाथी घोड़ों को छोड़कर और सब बधुओं का बन्धन छोड़दो" वा जब अमात्य

राक्षस मन्त्री हुए तब अब हाथी, घोड़ों का क्या सोच है? इससे—

छोड़ौ सब गज तुरंग अब, कछु मत राखौ बाँधि।
केवल हम बाँधत सिखा, निज परतिज्ञा साधि॥

(शिखा बाँधता है)

प्रतिहारी—जो आज्ञा (जाता है)।

चाणक्य—अमात्य राक्षस! मैं इससे बढ़ कर और कुछ भी आप का प्रिय कर सकता हूँ?

राक्षस—इससे बढ़ कर और हमारा क्या प्रिय होगा? पर जो इतने पर भी सन्तोष न हो तो यह अशीर्वाद सत्य हो—

वाराहीमात्मयोनेस्तनुमतनुबलामास्थितस्यानुरूपा
यस्य प्राग्दन्तकोटिम्प्रलयपरिगता शिश्रिये भूत धात्री॥
म्लेच्छैरुद्वेज्यमाना भुजयुगमधुना पीवरं राजमूर्तेः
स श्रीमद्बन्धुभृत्यश्चिरमवतु महाम्पार्थिवश्चन्द्रगुप्त!"

(सब जाते हैं)

सप्तम अंक समाप्त हुआ।

॥ इति ॥

उपसंहार क

इस नाटक में आदि अन्त तथा अङ्कों के विश्रामस्थल में रंगशाला में ये गीत गाने चाहिएँ। यथा—

(सब के पूर्व मङ्गलाचरण मे)

जय जय जगदीस राम, श्याम धाम पूर्णकाम, आनन्द घन ब्रह्म विष्णु, सत् चित सुखकारी। कंस रावनादिकाल, सतत-सनत भक्तपाल, सोभित गल मुक्तमाल, दीनतापहारी॥ प्रेम भरन पाप हरन, असरन जनसरन चरन, सुखहि करन दुखहि दरन, वृन्दावन चारी। रमावास जगनिवास, राम रमन समनत्रास, बिनवतहरिचन्ददास, जय जय गिरिधारी॥ १॥

(प्रस्तावना के अन्त मे प्रथम अङ्क के आरम्भ में)

(चाल लखनऊ की ठुमरी "शहजादे आलम तेरे लिये" इस चाल का)

जिनके हितकारक पण्डित हैं तिनको कहा सत्रुन को डर है।
समुझै जग में सब नीतिन्ह जो तिन्हैं दुर्ग बिदेस मनो घर है॥
जिन मित्रता राखी है लायक सों तिनको तिनकाहू महासर है।
जिनकी परतिज्ञा टरै न कबौं तिनकी जय ही सब ही थर है॥२॥

(प्रथम अङ्क की समाप्ति और दूसरे अङ्क के आरम्भ मे)

जग में घर की फूट बुरी। घर की फूटहि सों बिनसाई सुबरन लंकपुरी ॥ फूटहि सों सब कौरव नासे भारत युद्ध भयो। जाको घाटो या भारत मैं अब लौं नहिं पुरयो ॥ फूटहि सों जयचन्द बुलायो जवनन भारत धाम। जाको फल अब लौं भोगत सब आरज होइ गुलाम ॥ फूटहि सों नवनन्द बिनासे गयो मगध को राज। चन्द्रगुप्त को नासन चाह्यौ आपु नसे सह साज ॥ जो जग मैं धनमान और बल अपुनो राखन होय। तो अपुने घर मैं भूलेहु फूट करौ मति कोय ॥ ३ ॥

(दूसरे अङ्क की समाप्ति और तीसरे अङ्क के आरम्भ में)

जग मैं तेई चतुर कहावें। जे सब विधि अपने कारज को नीकी भाँति बनावें ॥ पढ्यौ लिख्यौ किन होइ जुपै नहिं कारज साधन जानै। ताही को मूरख या जग मैं सब कोऊ अनुमानै ॥ छल में पातक होत जदपि यह शास्त्रन मैं बहु भायौ। पै हारि सौं छल किए दोष नहिं मुनियन यहै बतायौ ॥ ४ ॥

(तीसरे अङ्क की समाप्ति और चतुर्थ अङ्क के आरम्भ में)

ठुमरी—तिन को न कछू कबहूँ बिगरे, गुरु लोगन को कहनो जे करें। जिनको गुरु पन्थ दिखावत हैं ते कुपन्थ पै भूलि न पाँव धरें। जिन कों गुरु रच्छत आप रहें ते बिगारे न बरिन के बिगरें। गुरु को उपदेश सुनौ सबही, जग कारज जासों सबै समरें ॥ ५ ॥

(चतुर्थ अङ्क की समाप्ति और पंचम अङ्क के आरम्भ में)

पूरबी—करि मुरख मित्र मिताई, फिर पछतैहो रे भाई। अन्त दशा खैहो सिर धुनिहौ रहिहौ सबै गँवाई ॥ मूरख जो कछु हितहु करै तामैं अन्त बुराई। उलटो उलटो काज करत सब देहै अन्त नसाई। लाख करौ हित मूरख सों पै ताहि न कछु

समझाई। अन्त बुराई सिर पै ऐहै रहि जैहो मुँह बाई॥ फिर पछितैहो रे भाई॥ ६॥

(पंचम अङ्क की समाप्ति और षष्ठ अङ्क के आरम्भ में)

काफी ताल होली का

छलियन सों रहो सावधान नहिं तो पछताओगे। इनकी बातन मैं फँसि रहिहौ सबहि गँवाओगे॥ स्वारथ लोभी जन सों आखिर दगा उठाओगे। तब सुख पैहो जब साँचन सों नेह बढ़ाओगे॥ छलियन सो०॥ ७॥

(छठे अङ्क की समाप्ति और सातवें अङ्क के आरम्भ मे)

('जिन के मन मे सियाराम बसे' इस धुन की)

जग सूरज चन्द टरै तो टरै पै न सज्जन नेहु कबौं बिचलै। धन सम्पति सर्वस गेह नसौ नहिं प्रेम की मेड़ सो एड़ टलै॥ सतवादिन को तिनका सम प्रान रहै तो रहै वा ढलै तो ढलै। निज मीत की प्रीत प्रतीत रहौ इक और सबै जग जाउ भलै॥८॥

(अन्त में गाने को)

(विहाग—श्लोक के अर्थ अनुसार)

हरौ हरि रूप सबै जग बाधा। जा सरूप सो धरनि उधारी निज जन कारज साधा॥ जिमि तब दाढ़ अग्र लै राखी महि हति असुर गिरायो। कनक दृष्टि म्लेच्छन हूँ तिमि किन अब लौं मारि नसायो॥ आरज राज रूप तुम तासों माँगत यह बरदाना। प्रजा कुमुदगन चन्द्र नृपति को करहु सकल कल्याना॥ ६॥

(विहाग ठुमरी)

पूरी अमी की कटोरिया सी चिरजीओ सदा विकटोरिया रानी। सूरज चन्द प्रकाश करें जब लौं रहै सात हूँ सिन्धु मैं

पानी। राज करौ सुख सों तबलौं निज पुत्र औ पौत्र समेत सयानी। पालौ प्रजागन कों सुख सों जग कीरति गान करें गुन गानी ॥१०॥

कलिंगड़ा—लहौ सुख सब बिधि भारतवासी। विद्या कला जगत की सीखौ तजि आलस की फाँसी ॥ अपनो देश धरम कुल समुझहु छोड़ि वृत्ति निज दासी। उद्यम करिकै होहु एक मति निज बल बुद्धि प्रकासी ॥ पंचपीर की भगति छाड़ि कै ह्वै हरि-चरन उपासी। जग के और नरन सम येऊ होउ सबै गुनरासी ॥

उपसंहार ख

इस नाटक के विषय में विलसन साहब लिखते हैं कि यह नाटक और नाटको से अति विचित्र है, क्योंकि इसमें सम्पूर्ण राजनीति के व्यवहारो का वर्णन है। चन्द्रगुप्त (जो यूनानी लोगो का सेन्ड्रोकोतस (Sandrocottus) है और पाटलिपुत्र (जो यूरप का पालीबोत्तरा Palibothra है) के वर्णन का ऐतिहासिक नाटक होने के कारण यह विशेष दृष्टि देने के योग्य है।

इस नाटक का कवि विशाखदत्त, महाराज पृथु का पुत्र और सामन्त बटेश्वरदत्त का पौत्र था। इस लिखने से अनुमान होता है कि दिल्ली के अन्तिम हिन्दूराजा पृथ्वीराज चौहान ही का पुत्र विशाखदत्त है, क्योंकि अन्तिम श्लोक से विदेशी शत्रु की जय की ध्वनि पाई जाती है, भेद इतना ही है कि रायसे में पृथ्वीराज के पिता का नाम सोमेश्वर और दादा का आनन्द लिखा है। मैं यह अनुमान करता हूँ कि सामन्त बटेश्वर इतने बड़े नाम को कोई शीघ्रता में या लघु करके कहे तो सोमेश्वर हो सकता है और सम्भव है कि चन्द ने भाषा में सामन्त बटेश्वर को ही सोमेश्वर लिखा हो।

मेजर विल्फर्ड ने मुद्राराक्षस के कवि का नाम गोदावरी तीर निवासी अनन्त लिखा है किन्तु यह केवल भ्रममात्र है। जितनी प्राचीन पुस्तकें उत्तर वा दक्षिण में मिलीं, किसी में अनन्त का नाम नहीं मिला है।

इस नाटक पर बटेश्वर मैथिल पण्डित की एक टीका भी है। कहते हैं कि गुहसेन नामक किसी अपर पण्डित की भी एक टीका

है, किन्तु देखने में नहीं आई। महाराज तञ्जौर के पुस्तकालय में व्यासराज यज्वा की एक टीका और है।

चन्द्रगुप्त* की कथा विष्णुपुराण, भागवत आदि पुराणों में और बृहत्कथा में वर्णित है। कहते हैं कि विकटपल्ली के राजा चन्द्रदास का उपाख्यान लोगों ने इन्हीं कथाओं से निकाल लिया है।

महानन्द अथवा महापद्मनन्द भी शूद्रा के गर्भ से था, और कहते हैं कि चन्द्रगुप्त इसकी एक नाइन स्त्री के पेट से पैदा हुआ था। यह पूर्व पीठिका में लिख आए हैं कि इन लोगो की राजधानी पाटलिपुत्र थी। इस पाटलिपुत्र (पटने) के विषय में यहाँ कुछ लिखना अवश्य हुआ। सूर्यवंशी सुदर्शन † राजा की पुत्री पाटली ने पूर्व में इस नगर को बसाया। कहते हैं कि कन्या को बन्ध्यापन के दुःख और दुर्नाम से छुड़ाने को राजा ने एक नगर बसाकर उसका नाम पाटलिपुत्र रक्खा था। वायुपुराण में जरासन्ध के "पूर्व पुरुष बसु राजा ने विहार प्रान्त का राज्य संस्थापन किया" यह लिखा है। कोई कहते हैं कि 'वेदो में जिस वसु के यज्ञ का वर्णन है वही राज्यगिरि राज्य का संस्थापक है।' (जो लोग चरणाद्रि को राजगृह का पर्वत बतलाते हैं उनका केवल भ्रम है।) इस राज्य का प्रारम्भ चाहे जिस तरह हुआ हो, पर जरासन्ध ही के समय से यह प्रख्यात हुआ।

* प्रियदर्शी, प्रियदर्शन, चन्द्र, चन्द्रगुप्त, श्रीचन्द्र चन्द्रश्री, मौर्य यह सब चन्द्रगुप्त के नाम हैं; और चाणक्य, विष्णुगुप्त, द्रौमिल वा द्रोहिण अंशुल, कौटिल्य यह सब चाणक्य के नाम हैं।

† सुदर्शन, सहस्रबाहु अर्जुन का भी नामान्तर था। किसी किसी ने भ्रम से पाटली को शूद्रक की कन्या लिखा है।

मार्टिन साहब ने जरासन्ध ही के विषय में एक अपूर्व कथा लिखी है वह कहते हैं कि जरासन्ध दो पहाड़ियों पर दो पैर रखकर द्वारका में जब स्त्रियाँ नहाती थीं तो ऊँचा होकर उनको घूरता था। इसी अपराध पर श्रीकृष्ण ने उनको मरवा डाला !!!

मगध शब्द मग से बना है। कहते हैं कि "श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब ने शाकद्वीप से मग जाति के ब्राह्मणों को अनुष्ठान करने को बुलाया था और वे जिस देश मे बसे उसकी मगध सञ्ज्ञा हुई।" जिन अङ्गरेज विद्वानों ने 'मगध देश' शब्द को मद्ध (मध्यदेश) का अपभ्रंश माना है उन्हें शुद्ध भ्रम हो गया है। जैसा कि मेजर विल्फर्ड पालीबोत्रा को राजमहल के पास गङ्गा और कोसी के सङ्गम पर बतलाते और पटने का शुद्ध नाम पद्मावती कहते है। यों तो पाली इस नाम के कई शहर हिन्दुस्तान में प्रसिद्ध है किन्तु पालीबोत्रा पाटलिपुत्र ही है। सोन के किनारे मावलीपुर एक स्थान है जिसका शुद्ध नाम महाबलीपुर है। महाबली नन्द का नामान्तर भी है, इसी से और वहाँ प्राचीन चिह्न मिलने से कोई-कोई शङ्का करते हैं कि बलीपुर वा वलीपुत्र का पालीबोत्रा अपभ्रंश है, किन्तु यह भी भ्रम ही है। राजाओं के नाम से अनेक ग्राम बसते हैं इसमे कोई हानि नहीं, किन्तु इन लोगो की राजधानी पाटलिपुत्र ही थी।

कुछ विद्वानों का मत है कि मग लोग मिश्र से आये और यहाँ आकर Isiris और Osiris नामक देव और देवी की पूजा प्रचलित की। यह दोनों शब्द ईश और ईश्वरी के अपभ्रंश बोध होते हैं। किसी पुराण में "महाराज दशरथ ने शाकद्वीपियों को बुलाया" यह लिखा है। इस देश मे पहले कोल और चेरु (चोल) लोग बहुत रहते थे। शुनक और अजक इस वंश में प्रसिद्ध हुए। कहते हैं कि ब्राह्मणों ने लड़ कर इन दोनों को निकाल दिया।

इसी इतिहास से भुइहार जाति का भी सूत्रपात होता है और जरासन्ध के यज्ञ से भुइहारों की उत्पत्ति वाली किम्वदन्ती इसका पोषण करती है। बहुत दिन तक ये युद्धप्रिय ब्राह्मण यहाँ राज्य करते रहे। किन्तु एक जैन पण्डित (जो ८०० वर्ष ईसामसीह के पूर्व हुआ है) लिखता है कि इस देश के प्राचीन राजा को मग नामक राजा ने जीत कर निकाल दिया। कहते हैं कि बिहार के पास बारागञ्ज मे इसके किले का चिह्न भी है। यूनानी विद्वानों और वायुपुराण के मत से उदयाश्व ने मगधराज संस्थापन किया। इसका समय ५५० ई० पू० बतलाते हैं और चन्द्रगुप्त को इससे तेरहवाँ राजा मानते हैं। यूनानी लोगों ने सोन का नाम Erannobaos (इरन्नाबाओस) लिखा है, यह शब्द हिरण्यवाह का अपभ्रंश है। हिरण्यवाह 'स्वर्णनद और शोण का अपभ्रंश सोन है मेगस्थिनीज अपने लेख में पटने के नगर को ८० स्टेडिया (आठ मील) लम्बा १५ चौड़ा लिखता है, जिससे, स्पष्ट होता है कि पटना पूर्वकाल ही से लम्बा नगर है* उसने उस समय

* जिस पटने का वर्णन उस काल के यूनानियों ने उस समय इस धूम से किया है उसकी वर्तमान स्थिति यह है। पटने का जिला २४.५८ से २५.४२ लैट० और ८४.४४ से ८६.०४ लौगि० पृथ्वी २१०१ मील समचतुष्कोण ! १५५९६३८ मनुष्यसंख्या। पटने की सीमा उत्तर गंगा, पश्चिम सोन, पूर्व मुगेंर का जिला और दक्षिण गया का जिला। नगर की वस्ती अब सवा तीन लाख मनुष्य और बावन हजार घर हैं। साढ़े आठ लाख मन के लगभग बाहर से प्रतिवर्ष यहाँ माल आता और पाँच लाख मन के लगभग जाता है। हिन्दुओं में छः जातिया यहाँ विशेष हैं। यथा एक लाख अस्सी हजार ग्वाला, एक लाख सत्तर हजार कुनबी, एक लाख सत्रह हजार भुइंहार, पचासी हजार चमार, अस्सी हजार कोइरी और आठ हजार राजपूत। अब दो लाख के आस पास मुसलमान पटने के जिले में बसते हैं।

नगर के चारों ओर ३० फुट गहरी खाई, फिर ऊँची दीवार और उसमें ५७० बुर्ज और ६४ फाटक लिखे हैं। यूनानी लोग जो इस देश को Prassi प्रासिस कहते हैं वह पालाशी का अपभ्रंश बोध होता है, क्योंकि जैनग्रन्थों में उस भूमि के पलाश वृक्ष से आच्छादित होने का वर्णन देखा गया है।

जैन और बौद्धों से इस देश से और भी अनेक सम्बन्ध हैं। मसीह से छः सौ बरस पहले बुद्ध पहले पहल राजगृह ही में उदास होकर चले गये थे। उस समय इस देश की बड़ी समृद्धि लिखी है और राजा का नाम बिम्बसार लिखा है। (जैन लोग अपने बीसवें तीर्थङ्कर सुव्रत स्वामी का राजगृह मे कल्याणक भी मानते हैं)। बिम्बसार ने राजधानी के पास ही इनके रहने को कलद नामक बिहार भी बना दिया था। फिर अजातशत्रु और अशोक के समय में भी बहुत से स्तूप बने। बौद्धों के बड़े-बड़े धर्म समाज इस देश में हुए। उस काल में हिन्दू लोग इस बौद्ध-धर्म के अत्यन्त विद्वेषी थे। क्या आश्चर्य है कि बुद्धों के द्वेष ही से मगध देश को इन लोगों ने अपवित्र ठहराया हो और गौतम की निन्दा ही के हेतु अहिल्या की कथा बनाई हो।

भारत नक्षत्र नक्षत्री राजा शिवप्रसाद साहब ने अपने इतिहास तिमिरनाशक के तीसरे भाग में इस समय और देश के विषय मे जो लिखा है वह हम पीछे प्रकाशित करते हैं। इससे बहुत सी बातें उस समय की स्पष्ट हो जायँगी।

प्रसिद्ध यात्री हियानसांग सन् ६३७ ई० में जब भारतवर्ष में आया था तब मगधदेश हर्षवर्धन नामक कन्नौज के राजा के अधिकार में था। किन्तु दूसरे इतिहास लेखक सन् २०० से ४०० तक बौद्ध कर्णवंशी राजाओं को मगध का राजा बतलाते हैं और आन्ध्रवंश का भी राज्यचिह्न सम्भलपुर में दिखलाते हैं।

सन् १२६२ ई० में पहले इस देश में मुसलमानों का राज्य हुआ। उस समय पटना, बनारस के बन्दावत राजपूत राजाइन्द्र दमन के अधिकार मे था। सन् १२२५ में अलतिमश ने गायासुद्दीन को मगध प्रान्त का स्वतन्त्र सूबेदार नियत किया। इसके थोड़े ही काल पीछे फिर हिन्दू लोग स्वतन्त्र होगये। फिर मुसलमानो ने लड़ कर अधिकार किया सही, किन्तु झगड़ा नित्य होता रहा। यहाँ तक कि सन् १३६३ में हिन्दू लोग स्वतन्त्र रूप में फिर यहाँ के राजा हो गए और तीसरे महमूद की बड़ी भारी हार हुई। यह दो सौ बरस का समय भारतवर्ष का पैलेस्टाइन का समय था। इस समय में गया के उद्धार के हेतु कई महाराणा उदयपुर के देश छोड़ कर लड़ने आये *। ये और पञ्जाब से लेकर गुजरात दक्षिण तक के हिन्दू मगध देश में जाकर प्राणत्याग करना बड़ा

* गया के भूगोल में पण्डित शिवनरायण त्रिवेदी भी लिखते हैं—"औरंगाबाद से तीन कोस अग्निकोण पर देव बड़ी भारी बस्ती है। यहाँ श्री भगवान् सूर्यनरायण का बड़ा भारी सङ्गीन पश्चिम रुख का मन्दिर है। यह मन्दिर देखने से बहुत प्रचीन जान पड़ता है। यहाँ कातिक और चैत्र की छठ को बड़ा मेला लगता है। दूर दूर के लोग यहाँ आते और अपने लड़कों का मुण्डन छेदन आदि की मनौती उतारते हैं। मन्दिर से थोड़ी दूर दक्खिन बाजार के पूरब ओर सूर्यकुण्ड का तालाब है। इस तालाब से सटा हुआ और एक कच्चा तालाब है उसमे कमल बहुत फूलते हैं। देवराजधानी है। यहाँ के राजा महाराजा उदयपुर के घराने के मड़ियार राजपूत हैं। इस घराने के लोग सिपाहगरी के काम में बहुत प्रसिद्ध होते आये हैं। यहाँ के महाराज श्री जयप्रकाशसिंह के० सी० एस० आई० बड़े सूर सुशील और उदार मनुष्य थे। यहाँ से दो कोस दक्खिन कंचनपुर में राजा साहिब का बाग और मकान देखने लायक बना है। देव से तीन कोस पूरब मउगा एक छोटी सी बस्ती है, उसके पास पहाड़ के ऊपर देव के सूर्यमन्दिर के ढंग

पुण्य समझते थे। प्रजापाल नामक एक राजा ने सन् १४०० के लगभग बीस बरस मगधदेश को स्वतन्त्र रक्खा। किंतु आर्यमत्सरी देव ने यह स्वतन्त्रता स्थिर नहीं रक्खी और पुण्यधाम गया फिर मुसलमानों के अधिकार में चला गया। सन् १४७८ तक यह प्रदेश जौनपुर के बादशाह के अधिकार मे रहा फिर बहलूलवंश ने इसको जीत लिया था, किन्तु १४६१ मे शाहंशाह ने फिर जीत लिया। इसके पीछे बंगाल के पठानो से और जौनपुर वालों से कई लड़ाई हुई और १४६४ में दोनो राज्य में एक सुलहनामा होगया। इसके पीछे सूर लोगों का अधिकार हुआ और शेरशाह ने बिहार छोड़ कर पटने को राजधानी किया। सूरो के पीछे क्रमान्वय से (१५७५ ई०) यह देश मुगलों के आधीन हुआ और अन्त मे जरासन्ध और चन्द्रगुप्त की राजधानी पवित्र पाटलिपुत्र ने आर्य्य वेश और आर्य्यनाम परित्याग करके औरङ्गजेब के पोते अजामशाह के नाम पर अपना नाम अज़ीमाबाद प्रसिद्धि किया। (१६६७ ई०) बंगाल के सूबेदारो में सब से पहिले सिराजुद्दौला ने अपने को स्वतन्त्र समझा था, किंतु १७५७ ई० की पलासी की लड़ाई मे मीरजाफर अङ्गरेजों के बल से बिहार बंगाल और उड़ीसा का अधिनायक हुआ। किंतु अन्त मे जगद्विजयी अंगरेजा ने सन् १७६३ से पूर्व में

का एक महादेव का मन्दिर है। पहाड़ के नीचे एक टूटा गढ़ भी देख पड़ता है। जान पड़ता है कि पहले राजा देव के घराने के लोग यहाँ ही रहते थे, पीछे देव में बसे। और देव उमगा दोनों इन्ही की राजधानी थीं, इससे दोनों नाम साथ ही बोले जाते हैं (देवमूँगा) तिल सक्रान्ति को उमगा में बड़ा मेला लगता है।" इससे स्पष्ट हुआ कि उदयपुर से जो राणा लोग आये उन्हीं के खानदान मे देव के राजपूत हैं और विहारदर्पण से भी यह बात पाई जाती है कि मडियार लोग मेवाड़ से आये हैं।

पटना पर अधिकार करके दूसरे बरस बकसर की प्रसिद्ध लड़ाई जीत कर स्वतन्त्र रूप से सिंहचिन्ह की ध्वजा की छाया के नीचे इस देश के प्रान्त मात्र को हिन्दोस्तान के मानचित्र मे लाल रंग से स्थापित कर दिया।

जस्टिन (Justin) कहता है— १) सन्द्रकुत्तस महा पराक्रमी था। असंख्य सैन्य संग्रह करके विरोधी लोगों का इसने सामना किया था। डियोडारस सिक्यूलस (Deodorus Siculu's) कहता है—(२) प्राच्यदेश के राजा चन्द्रमा के पास २०००० अश्व २०००० पदाती २००० रथ और ४०००० हाथी थे यद्यपि यह xandramas शब्द चन्द्रमा का अपभ्रंश है, किंतु कई भ्रांत यूनानियों ने नन्द को भी इसी नाम से लिखा है। किन्तस (Quintus Curtius) लिखता है—(३) चन्द्रमा के चौरकार पिता पहले मगधराज को फिर उसके पुत्रों को नाश करके रानी के गर्भ से अपने उत्पन्न किये हुए पुत्र को गद्दी पर बैठाया। स्ट्राबो (Strabo) कहता है—(४) सेल्यूकस के मेगास्थनिस को सन्द्रकुत्तस के निकट भेजा और अपना भारतवर्षीय समस्त राज्य देकर उससे सन्धि करली। ओरियन (Orriun) लिखता है—(५) मेगास्थनिस अनेक बार सन्द्रकुत्तस की सभा में गया था। प्लूटर्क (Plutarch) ने (६) चन्द्रगुप्त को दो लक्ष सेना का नायक लिखा है। इन सब लेखों को पौराणिक

---

(1) Justin His Phellipp Lib. xv Chap. IV.

(2) Deodorus Siculus XVII. 93.

(3) Quintus Curtius IX. 2.

(4) Strabo XV. 2 9.

(5) Orriun Indica X. 5.

(6) Plutarch Vita Alexandri O. 62.

वर्णनों से मिलाने से यद्यपि सिद्ध होता है कि सिकन्दरकृत पुरु पराजय के पीछे मगधराज मन्त्री द्वारा निहत हुए और उनके लड़के भी उसी गति को पहुँचे और उसके पीछे चन्द्रगुप्त राजा हुआ, किन्तु बहुत से यूनानी लेखकों ने चन्द्रगुप्त को पटरानी के गर्भ में क्षौरकार से उत्पन्न लिखकर व्यर्थ अपने को भ्रम में डाला है। चन्द्रगुप्त क्षत्रिय-वीर्य से दासी में उत्पन्न था यह सर्वसाधारण का सिद्धान्त है। (७) इस क्रम से ३२७ ई० पू० में नन्द का मरण और ३१४ ई० पू० में चन्द्रगुप्त का अभिषेक निश्चय होता है। पारसदेश की कुमारी के गर्भ से सिल्यूकस को जो एक अति सुन्दर कन्या हुई थी वही चन्द्रगुप्त को दी गई। ३०२ ई० पू० मे यह सन्धि और विवाह हुआ, इसी कारण अनेक यवनसेना चन्द्रगुप्त के पास रहती थी। २९२ ई० पू० मे चन्द्रगुप्त २४ बरस राज्य करके मरा।

चन्द्रगुप्त के इस मगधराज को आईने अकबरी मे मकता लिखा है। डिग्विग्नेस (Deguignes) कहता है कि चीनी मगध देश को मकियात कहते हैं। केम्फर (K mfer) लिखता है कि जापनी लोग उसको मगत् कफ करते हैं। (कफ शब्द जापानी मे देशवाची है) प्राचीन फारसी लेखको ने इस देश का नाम माबाद वा मुबाद लिखा है। मगधराज्य में अनुगांग प्रदेश मिलने ही से तिब्बतवाले इस देश को अनुखेक वा अनोनखेक कहते हैं; और तातार वाले इस देश को एनाकाक लिखते हैं।

सिसली डिओडोरस ने लिखा है, कि मगध राजधानी पाली-पुत्र भारतवर्षीय हर्क्यूलस (हरि कुल) देवता द्वारा स्थापित

---

(७) टाड आदि कई लोगों का अनुमान है कि मोरी वंश के चौहान जो बापाराव के पूर्व चितौर के राजा थे वे भी मौर्य थे। क्या चन्द्रगुप्त चौहान था? या ये मोरी सब शूद्र थे।

हुई। सिसरो ने हर्क्यूलस (हरिकुल) देवता का नामान्तर बेलस (बल:) लिखा है। बल शब्द बलदेवजी का बोध करता है और इन्हीं का नामान्तर बलो भी है। कहते है कि निज पुत्र अङ्गद के निमित्त बलदेवजी ने यह पुरी निर्माण की, इसी से बलीपुत्र पुरी इसका नाम हुआ। इसी से पालीपुत्र और फिर पाटलीपुत्र हो गया। पाली भाषा, पाली धर्म पाली देश इत्यादि शब्द भो इसी से निकले है। कहते हैं बाणासुर के बसाए हुए जहाँ तीन पुर थे उन्हीं को जीत कर बलदेवजी ने अपने पुत्रों के हेतु पुर निर्माण किए। यह तीनों नगर महाबलीपुर इस नाम से एक मद्रास हाते में, एक विदर्भदेश में (मुजफ्फरपुर वर्त्तमान नाम) और एक (राजमहल वर्त्तमान नाम से) बङ्गदेश में है। कोई कोई बालेश्वर मैसूर पुरनियाँ प्रभृति को भी बाणासुर की राजधानी बतलाते हैं। यहाँ एक बात बड़ी विचित्र प्रगट होती है। बाणासुर भी बलीपुत्र है। क्या आश्चर्य है कि पहले उसी के नाम से बलिपुत्र शब्द निकला हो। कोई नन्द ही का नामान्तर महाबली कहते है और कहते हैं कि पूर्व में गङ्गाजी के किनारे नन्द ने केवल एक महल बनाया था, उसके चारों ओर लोग धीरे-धीरे बसने लगे और फिर यह पत्तन (पटना) हो गया। कोई महाबली के पितामह उदसी, उदासी, उदय, श्रीउदयसिंह (?) ने ४५० ई० पू० इसको बसाया मानते हैं। कोई पालटी देवी के कारण पाटलिपुत्र मानते हैं।

विष्णुपुराण और भागवत में महापद्म के बड़े लड़के का नाम नाम सुमाल्य लिखा है। वृहत्कथा में लिखते हैं कि शकटाल ने इन्द्रदत्त का शरीर जला दिया इससे योगानन्द (अर्थात् नन्द के शरीर में इन्द्रदत्त की आत्मा) फिर राजा हुआ। व्याड़ि जाने के समय शकटाल को नाश करने का मन्त्र दे गया था। वररुचि मन्त्री हुआ, किन्तु योगानन्द ने मदमत्त होकर उसको

नाश करना चाहा, इससे वह शकटार के घर में छिपा। उसकी स्त्री उपकोशा पति को मृत समझ कर सती हो गई। योगानन्द के पुत्र हिरण्यगुप्त के पागल होने पर वररुचि फिर राजा के पास गया था, किन्तु फिर तपोवन में चला गया, फिर शकटाल के कौशल से चाणक्य नन्द के नाश का कारण हुआ। उसी समय शकटाल ने हिरण्यगुप्त जो कि योगानन्द का पुत्र था उसको मार कर चन्द्रगुप्त को, जो कि असली नन्द का पुत्र था, गद्दी पर बैठाया।

ढुंढि पण्डित लिखते हैं कि सर्वार्थसिद्धि नन्दो में मुख्य था। इसके दो स्त्रियाँ थीं। सुनन्दा बड़ी थी और दूसरी शूद्रा थी, उसका नाम मुरा था। एक दिन राजा दोनो रानियों के साथ एक ऋषि के यहाँ गया और ऋषिकृत मार्जन के समय सुनन्दा पर नौ और मुरा पर एक छींट पानी की पड़ी। मुरा ने ऐसी भक्ति से उस जल को ग्रहण किया कि ऋषि ने प्रसन्न होकर वरदान दिया। सुनन्दा को एक माँसपिण्ड और मुरा को मौर्य उत्पन्न हुआ। राक्षस ने माँस पिण्ड काट कर नौ टुकड़े किये जिससे नौ लड़के हुए। मौर्य के सौ लड़के थे, जिसमे चन्द्रगुप्त सबसे बड़ा और बुद्धिमान् था। सर्वार्थसिद्धि ने नन्दों को राज्य दिया और आप तपस्या करने लगा। नन्दों ने ईर्षा से मौर्य्य और उसके लड़कों को मार डाला, किन्तु चन्द्रगुप्त चाणक्य ब्राह्मण के पुत्र विष्णुगुप्त की सहायता से नन्दों को नाश करके राजा हुआ।

योंहीं भिन्न-भिन्न कवियों और विद्वानों ने भिन्न-भिन्न कथायें लिखी हैं। किन्तु सबके मूल का सिद्धान्त पास-पास एक ही आताहै। इतिहास-तिमिर-नाशक में इस विषय में जो कुछ लिखा है वह नीचे प्रकाशित किया जाता है।

बिम्बसार को उसके लड़के अजातशत्रु ने मार डाला। मालूम होता है कि यह फसाद ब्राह्मणों ने उठाया। अजातशत्रु बौद्ध मत का शत्रु था। शाक्यमुनि गौतम बुद्ध श्रीवस्ति में रहने लगा। यहाँ भी प्रसेनजित को उसके बेटे ने गद्दी से उठा दिया; शाक्यमुनि गौतम बुद्ध कपिलवस्तु में गया।

अजातशत्रु की दुश्मनी बौद्ध मत से धीरे धीरे बहुत कम होगई शाक्यमुनि गौतम बुद्ध फिर मगध में गया। पटना उस समय एक गाँव था। वहाँ हरकारों की चौकी में ठहरा वहाँ से विशाली[1] में गया। विशाली की रानी वेश्या थी यहाँ से पावी[2] गया वहाँ से कुशीनार गया। बौद्धों के लिखने बमूजिब उसी जगह सन् ईसवी ५४३ बरस पहले ७० वर्ष की उम्र में साल के वृक्ष के नीचे बाईं करवट लेटे हुए इस का निर्वाण[3] हुआ। काश्यप उसका जानशीन हुआ। अजातशत्रु के पीछे तीन राजा अपने बाप को मार कर मगध की गद्दी पर बैठे, यहाँ तक कि

---

(१) जैनी महावीर के समय विशाली अथवा विशाला का राजा चेटक * बतलाते हैं, यह जगह पटने के उत्तर तिरहुत में हैं; उजड़ गई है। वहाँ वाले अब उसे बसहर पुकारते हैं।

(२) जैनी यहाँ महावीर का निर्वाण बतलाते हैं, पर जिस जगह को अब पावापुर मानते हैं असल में वह नहीं है। पावा विशाली से पश्चिम और गंगा से उत्तर होना चाहिये।

(३) जैन अपने चौबीसवें अर्थात् सबसे पिछले तीर्थङ्कर महावीर का निर्वाण विक्रम के सम्वत् से ४७०, अर्थात् सन् ईस्वी से ५२७ बरस पहले बतलाते हैं और महावीर के निर्वाण से २५० बरस पहले अपने तेईसवे तीर्थंकर पार्श्वनाथ का निर्वाण मानते हैं।

---

* कैसे आश्चर्य की बात है, चेटक रंडी के भड़वे को भी कहते हैं (हरिश्चन्द्र)।

प्रजा ने घबराकर विशाला की वेश्या के बेटे शिशुनाग मन्त्री को गद्दी पर बैठा दिया। यह बड़ा बुद्धिमान था। इसके बेटे काल अशोक ने, जिसका नाम ब्राह्मणों ने काकवर्ण भी लिखा है, पटना अपनी राजधानी बनाया।

जब सिकन्दर का सेनापति बाबिल का बादशाह सिल्यूकस सूबेदारों के तदारुक को आया, पटने से सिन्धु किनारे तक नन्द के बेटे चन्द्रगुप्त के अमल दखल में पाया, बड़ा बहादुर था, शेर ने इसका पसीना चाटा था और जङ्गली हाथी ने इसके सामने सिर झुका दिया था।

पुराणों में बिम्बसार को शिशुनाग के बेटे काकवर्ण का परपोता बतलाया है और नन्दिवर्द्धन को बिम्बसार के बेटे अजातशत्रु का परपोता; और कहा है कि नन्दिवर्द्धन का बेटा महानन्द का बेटा सूद्री से महापद्मनन्द और इसी महापद्मनन्द और उसके आठ लड़कों के बाद, जिन्हें नवनन्द कहते हैं, चन्द्रगुप्त मौर्य गद्दी पर बैठा। बौद्ध कहते हैं कि तक्षशिला के रहनेवाले चाणक्य ब्राह्मण ने धननन्द को मार के चन्द्रगुप्त को राजसिंहासन पर बैठाया और वह मोरिया नगर के राजा का लड़का था और उसी जाति का था जिसमें शाक्यमुनि गौतम पैदा हुआ।

मेगास्थनीज लिखता है कि पहाड़ों में शिव और मैदान में विष्णु पुजते हैं। पुजारी अपने बदन रंग* कर और सिर में फूलों की माला लपेट कर घण्टा और झाँझ बजाते हैं। एक वर्ण का आदमी दूसरे वर्ण की स्त्री से व्याह नहीं कर सकता है और पेशा भी दूसरे का इख्तियार नहीं कर सकता है। हिन्दू घुटने तक जामा पहनते हैं और सिर और कन्धों पर कपड़ा † रखते हैं। जूते उन

---

* चन्दन इत्यादि लगाकर।

† अर्थात् पगड़ी दुपट्टा।

के रङ्ग-विरङ्ग के चमकदार और कारचोबी के होते हैं। बदन पर अकसर गहने, भौ महदी से रंगते हैं और दाढ़ी मूछ पर खिजाब करते हैं। छतरी, सिवाय बड़े आदमियों के और कोई नहीं लगा सकता। रथों में लड़ाई के समय घोड़े और मञ्जिल काटने के लिये बैल जोते जाते हैं। हाथियों पर भारी जर्दोजी की भूल डालते हैं। सड़कों की मरम्मत होती है। पुलिस का अच्छा इन्तिजाम है। चन्द्रगुप्त के लशकर मे औसत चोरी तीस रुपये रोज से जियादा नहीं सुनी जाती है। राजा जमीन फी पैदावार से चौथाई लेता है।

चन्द्रगुप्त सन् ई० के ६१ बरस पहले मरा, उसके बेटे बिन्दुसार के पास यूनानी एलची दयोमेक्स (Diamachos) आया था परंतु वायुपुराण में उसका नाम भद्रसार और भागवत में वारिसार और मत्स्यपुराण में सायद बृहद्रथ लिखा है। केवल विष्णुपुराण बौद्ध ग्रन्थों के साथ बिंदुसार बतलाता है। उसके १६ रानी थीं और उनसे १०१ लड़के, उनमें अशोकों जो पीछे से "धर्म्म अशोक" कहलाया, बहुत तेज था, उज्जैन का नाजिम था। वहाँ के एक सेठ ‡ की लड़की देवी उससे ब्याही थी। उसी से महेन्द्र लड़का और संघमिता (जिसे सुमित्रा भी कहते है) लड़की हुई थी।

---

‡ सेठ श्रेष्ठ का अपभ्रंश है, अर्थात् जो सबसे बड़ा हो।

शब्दार्थ

पृष्ठ १—जनस्थान = मनुष्यों के रहने का स्थान।

पृष्ठ २—प्रयाण = गमन। उद्धत = अक्खड़। निविड़ = घोर।

पृष्ठ ३—महामात्य = प्रधान मंत्री (महा अमात्य)

पृष्ठ ५—वृत्त = समाचार।

पृष्ठ ६—कुशा = डाभ।

पृष्ठ ७—करार = वचन, प्रतिज्ञा।

पृष्ठ ६—औरस = अपनी धर्मपत्नी से उत्पन्न पुत्र। आसु = शीघ्र। रजताई = सफेदी। प्रवाल = मूँगा। रास = ढेर। भैम = एक राजा का नाम। वासव = इन्द्र। कैक = कई एक।

पृष्ठ १२—अभिचार = यंत्र मंत्र द्वारा मारण, उच्चाटन आदि हिंसा कर्म निर्माल्य = देवार्पित वस्तु। सद्य = शीघ्र।

पृष्ठ १२—लोभ परतंत्र = लोभी। कृत्या = तंत्र प्रयोग से उत्पन्न राक्षसी।

पृष्ठ १७—लवारी = झूठा (चन्द्रमा नहीं है तो)। सर्वकल्याकर = शिव।

पृष्ठ १६—मुशल = मूशल (नाज कूटने का यंत्र) सघन = प्रमाण में अधिक।

पृष्ठ २५—कालसर्पिणी = काल रूपी नागिन।

पृष्ठ ३१—विराग = विरक्ति। क्षपणक = दिगंबर यति के वेष में चाणक्य का एक भेदिया।

पृष्ठ ३३—कलकल = कोलाहल।

पृष्ठ ४०—हिमाद्रि = हिमालय पर्वत।

पृष्ठ ४६—मण्डल = व्यूह। बोहनी = प्रारम्भिक विधि।

पृष्ठ ४७—बारवधू = वैश्या।

पृष्ठ ४८—असु = प्राण। बुद्धिसर = बुद्धि रूपी बाण से।

पृष्ठ ५१—जोधन = योधाओं से।

पृष्ठ ५३—घटोत्कच = भीमसेन का पुत्र। करन = कर्ण (महाभारत की कथा)

पृष्ठ ५५—अभिसेक = राजतिलक। बर्बर = जाति विशेष।

पृष्ठ ७३—कौमुदी महोत्सव = कार्तिकी पूर्णिमा के दिन होने वाला उत्सव। मूरछा = बेहोशी।

पृष्ठ ७१—वृषल = शूद्रा से उत्पन्न, चन्द्रगुप्त।

पृष्ठ ७३—निवेरिकै = पूरा करके। विट = सखा।

पृष्ठ ७४—धरसि = नाश।

पृष्ठ ७२—सुरधुनी-कन = गङ्गाजी की बूंदे।

पृष्ठ ७५—घनपटली = मेघों की छत। ढरारे = चलायमान होने वाले। दन्तपात = दाँत टूटना।

पृष्ठ ८७—वलय = कङ्कड़। अलक = बाल।

पृष्ठ १००—लखौटा = दिखावट।

पृष्ठ ११५—अन्वित = मिला हुआ।

पृष्ठ ११७—अवगाहि = डूबी हुई। अवनीस = राजा।

पृष्ठ १२५—गण्डजुगल = दोनों गाल।

पृष्ठ १२७—जलद-नील-तन = जलद के समान नीला तन है जिनका (कृष्ण भगवान)। केशी = राक्षस का नाम है जिसको भगवान् कृष्ण ने मारा था।

पृष्ठ १२८—निवर्हण = निवाहना (कार्य रूप)। वयस्य = मित्र, सखा।

पृष्ट १३०—अनुगौन = पीछे चलना। आप्त = श्रेष्ठ। सैलेश्वरहिं = पर्ब्बतेश्वर को।

पृष्ट १३१—सन्धान = धनुष खींचना। परिखनि = पहिए की लीक।

पृष्ट १३२—पिङ्गक = एक पत्ती का नाम। फाहा = मरहम की पट्टी। व्रन = घाव। पटह = ढोल।

पृष्ट १३७—निष्क्रय = तेज, धार दार।

पृष्ट १४४—वसनहि = कपड़ों मे। आरत—बुरा।

पृष्ट १४५—लेख = पत्र।

पृष्ट १४६—निषङ्ग = तरकश। जूथाधिप = सेना नायक।

कठिन पद्यों का अर्थ

पृष्ट २०—पद्य संख्या ७ चन्द्रविम्ब = चंद्रमण्डल, पूरन = पूरा नहीं। हठ दाप = जिद से, हठ से। बुध = बुध ग्रह।

चन्द्रमा के अधूरे ही विम्ब को क्रूर स्वभाव वाला केतु हठ कर के बल से ग्रसना चाहता है, परन्तु बुध जैसे रत्तक होने के कारण वह ऐसा करने को असमर्थ है।

२—चन्द्रविम्ब पूरन = चन्द्रगुप्त जिसका अभी पूरा अधिकार नहीं। क्रूर = रात्तस। केतु = मलयकेतु। ग्रास = पकड़ना। बुध = चाणक्य।

अर्थ—रात्तस मलयकेतु का सहायक बनकर अधूरे अधिकार वाले चन्द्रगुप्त को बल से राज्यच्युत करना चाहता है परन्तु ऐसा कौन कर सकता है जब तक कि बुद्धिमान चाणक्य उस की रत्ता करता है।

पृष्ट २६—दिस सरिस ····गजराज को।

मेरी क्रोधाग्नि ने नीति रूप पवन से तीव्र होकर मन्त्री रूप वृक्षों को पुरवासियों को छोड़ के जला कर नन्दवंश रूप बाँसों के बन को समूल नष्ट कर दिया। उससे रिपुरमणी रूप दिशा का मुख रूप चन्द्रमा धुँधला हो गया है। मेरी क्रोधाग्नि शत्रु रूप इंधन न रहने के कारण अब शान्त हो गई है।

पृष्ठ ४५—तन्त्र मुक्ति······उपचार।

सर्प पक्ष में:—

जड़ी बूटी तथा तन्त्र मन्त्र जो लोग जानते हैं और विचार कर मण्डल (घेरा जिसमें से सर्प बाहर न जाने पावे) बनाते हैं। वही लोग सर्प का उपचार करते हैं। राजा पक्ष में:—जो राज्य प्रबन्ध तथा राजा के प्रसन्न रखने की युक्ति भली भाँति जानते हैं, और जो शत्रु, मित्र उदासीन आदि को समझ कर राज्य का स्थापन करते हैं तथा मंत्र (सलाह) को गुप्त रखते हैं अथवा सेना का मण्डल ठीक करते हैं वही लोग राजा को प्रसन्न रख सकते है।

पृष्ठ ४६—जिस प्रकार गुण और नीति के बल से जो यादव-गण अपने शत्रुओं पर विजय पा चुके थे वे लोग प्रबल होनहार के कारण सब के सब नष्ट हो गये। उसी प्रकार यह बड़ा नन्द-कुल भी समूल नाश हो गया इसी सोच में मुझे दिन रात नित्य जागते ही बीतते हैं। मुझे मेरे भाग्य के जो आश्रयहीन विचित्र चित्र हैं, दिखाई देते हैं।

भावार्थ—जिस प्रकार दीवार पर रङ्ग बिरंगे चित्र बनाए जा सकते हैं। जो यदि दीवार का आश्रय नहीं हो तो चित्र नहीं बन सकते। अर्थात् नन्दकुल की रक्षा का कोई भी आधार होता तो अच्छा होता। आश्रय न होने पर नन्द वंश के उद्धार के उपाय केवल ख़याली चित्र हैं।

कृष्ण भगवान् की रक्षा में जब यादव लोग बहुत बढ़ गये और उनके अभिमान का वारापार न रहा तो भगवान् की प्रेरणा से उनको प्रभास क्षेत्र में ब्राह्मण से शाप लगा जिसके कारण वे सब आपस मे कट मर गये। केवल बलराम तथा कृष्ण दो ही शेष रह गये थे तब बलिराम तो योगाभ्यास से समुद्र के तीर अन्तर्द्धान हो गये और कृष्ण भगवान् एक व्याधा के हाथ से मारे गये जिसको कि उन्होने बालि वानर रूप मे पम्पापुर में मारा था।

उसी प्रकार ब्राह्मण के द्वारा ही नन्दवंश का सर्वनाश हुआ।

पृष्ठ ५१—नृपनन्द काम ..... पाइ है।

जैसे चाणक्य ने अपनी नीति कुशलता से नन्दवंश का सर्वनाश कर चन्द्रगुप्त का स्थापन किया। उसी प्रकार मेरे बुढ़ापे के कारण मेरी काम वासना जाती रही और धर्म उसका स्थानापन्न हुआ है। जैसे समय पाकर लोभ जिस प्रकार धर्म पर विजय पाने का प्रयत्न करता है वैसे ही राक्षस चन्द्रगुप्त पर विजय पाना चाहता है। परन्तु लोभ (बुढ़ापे के कारण) और राक्षस (रात्त दिन के सोच के कारण) शिथिल बल हैं इसलिये उन पर विजय पाना कठिन काम है।

पृष्ठ ५२—सकल कुसुम ..... जगकाज।

रसिक सिरोमणि भौंरा सब फूलो से रस लेकर जिस प्रकार शहद बनाता है और उसे जो पीछे छोड़ता है (अर्थात् बचा रखता है) तो उससे संसार के लोगों को बड़ा लाभ होता है। (अर्थात् मैंने कुसुमपुर का सब हाल जान लिया है उससे सब काम ठीक होगा।)

पृष्ठ ५३—लै वाम ..... आलिङ्ग करे।

यहाँ कवि ने नन्दवंश की जो राजश्री है उसको एक स्त्री रूप ठहराया है और उस पर चन्द्रगुप्त का अधिकार नीति संगत नहीं होने के कारण उसको दाई और बैठी हुई कल्पना किया है।

अर्थ—नन्दवंश की राजश्री चन्द्रगुप्त को अपनाने में संकोच करती है। (क्योंकि राक्षस मंत्री चन्द्रगुप्त को राज्य से गिराने के प्रयत्न में लगा हुआ था और चाणक्य उसकी रक्षा करने पर था) वह अपना लता रूप बायाँ हाथ चन्द्रगुप्त के गले पर रखती है पर वह गिर-गिर पड़ता है और दाँये हाथ को भी गोद के बीच मे ले गिरता है अर्थात् जैसे ही दोनों हाथों को आलिंगन करने को रखती है परन्तु गाढ़ा स्नेह नहीं होने से (पेट में डरती है कि कहीं राक्षस फिर इसको पदच्युत न करदे) उससे छाती से छाती नहीं मिलती अर्थात् गाढ़ालिङ्गन अब भी नहीं करती।

पृष्ठ ५५—कर्ण—कुन्ती के पुत्र थे। कुन्ती बचपन से ही ऋषि-मुनियों की सेवा अधिक किया करती थी। इस पर दुर्वासा मुनि ने प्रसन्न होकर उसको वह विद्या सिखा दी कि जिस-जिस देवता की वह पूजा करे उसके प्रसाद से वह आपत्तिकाल में पुत्र पैदा कर सके। उसने मुनि की शिक्षानुसार परीक्षार्थ सूर्य की प्रार्थना की और कर्ण पैदा हुए। इस समय कुन्ती कारी थी इसलिए उसने अपवाद वश कर्ण को नदी में बहा दिया। वहाँ से सूत उठा ले गया और पालनपोषण किया। इन्होंने परशुरामजी से विद्या सीखी।

जब कौरव पाण्डव द्रोणाचार्यजी से धनुर्विद्या सीख चुके तब उन सब की परीक्षा एक रङ्ग भूमि मे हुई। कर्ण भी वहाँ आये, इन्होने अर्जुन का बल देख कर उनसे लड़ना चाहा पर कृपाचार्यजी ने इनको राजपुत्र न होने के कारण युद्ध से रोक

दिया। उसी समय दुर्योधन ने (जो पाण्डवों से जलता था कर्ण को अङ्गदेश का राजा बना दिया परन्तु तब भी लड़ाई न हुई। दुर्योधन तथा कर्ण में गहरी मित्रता हो गई। कर्ण महाभारत मे दुर्योधन की ओर से लड़े थे। कर्ण के पास कुछ ऐसे बाण थे जो व्यर्थ नहीं जाते थे उनको इन्द्र माँग ले गये कि कहीं ये अर्जुन को मार न दें और उसके बदले मे अमोघ शक्ति दे गये। कर्ण उस शक्ति से अर्जुन को मारना चाहते थे परन्तु वह भी शक्ति कृष्ण की प्रेरणा से घटोत्कच पर छोड़ी गई।

घटोत्कच—यह एक राक्षसी से पैदा भीम का पुत्र था और बड़ा पराक्रमी था।

पृष्ठ ६१—वह सूली..........मनतं।

वह जो राज्य दण्ड की सूली गढ़ी है बड़ी दृढ़ है उसी ने चन्द्र का राज्य स्थिर किया है। वह जो सूली मे रस्सी है वही मानो राज्य लक्ष्मी चन्द्रगुप्त से लपटी हुई है।

पृष्ठ ७७—अहो......अहो विस्मय दरसाई।

यह शरद ऋतु महादेव बन कर आई है जो फूले हुए काँसों की ही भस्म रमाये हुए है। और उगा हुआ चन्द्र ही मानो शीषफूल है जो बड़ी शोभा दे रहा है। बादलों की अवली ही मानो राज चर्म है। खिले हुए पुष्प मानो मुण्डमाला है। राज हंस ही मानो महादेवजी की हँसी है जिससे आनन्द आता है।

पृष्ठ ७—हरौ हरि..........उरमाहीं।

शरद ऋतु को आई हुई जान कर जगत के शुभचिंतक शेषनाग की गोद मे जागे हुए कृष्ण भगवान के कुछ २ खुले हुए, कुछ मुदे हुए, आलस से भरे हुए, लाल कमल के रंग जैसे मतवाले ठहरे हुए भी चलायमान, तथा शेष नाग की मणि की कान्ति के चकाचौंध में संकुचित न होने वाले, (जागते समय)

नींद और परिश्रम की दशा में लक्ष्मी को अत्यन्त प्यारे लगने वाले ऐसे नेत्र हमारी बाधा दूर करें।

पृष्ठ ६८—एक गुनी तिथि ·····लाभ अनेक।

तिथि का फल एक गुना, नक्षत्र का फल चौगुना, लग्न का फल तीन गुना होता है सब पत्रों में यही कहा है। जिस लग्न में क्रूर ग्रह न हों वह शुभ होती है यहाँ पर केतु है पर अस्त है। यदि शुभ मुहूर्त में सन्देह है तो चन्द्र का बल जो लग्न से लाख गुना अधिक है देख कर जाओ तो अनेक लाभ प्राप्त होंगे।

अथवा उत्तरार्द्ध दोहा का अर्थ—ग्रह तो शुभ है परन्तु क्रूर-ग्रह अर्थात् केतु (मलयकेतु) को छोड़कर जाओ। चन्द्र बल भद्रभट आदि को साथ लो तब तुम्हारा कल्याण होगा अर्थात् तुम मंत्री हो जाओगे।

पृष्ठ १००—देश और काल को समझना ही मानों कलश है इसमे बुद्धि रूपी जल भरा है जिसके सींचने से चाणक्य की नीति रूपी बेलि बहुत फल देवेगी।

पृष्ठ १२८—केशी एक राक्षस था जो कंस का भेजा हुआ कृष्ण को मारने गया था। उसने घोड़े का रूप धर कर उनकी बाँह पकड़ ली। उन्होंने अपनी भुजा लम्बी और गर्म कर दी जिससे वह मर गया।

पृष्ठ १२१—यह फाँसी मुख अर्थात् सिरे पर छ:गुनी रस्सी से गुथी हुई है और फन्दा की भाँति बनी हुई है, उसकी जय होवे। जिसकी प्रत्येक गाँठ शत्रु वध मे दक्ष है ऐसी चाणक्य की नीति की डोरी, तेरी जय होवे।

पृष्ठ १४१—लोग ऐसा कहते हैं कि शकटदास बच गया तो फिर मारने वाले क्यों मारे गये इसका भेद कुछ समझ में नहीं आता।

नाटक में आये हुए पात्रों का परिचय

वीभत्सक—यह राक्षस की आज्ञा से चन्द्रगुप्त को सोते में मारने को गया था। परन्तु यह जैसे ही कुछ आदमी लेकर सुरंग में छिपा था वैसे ही चाणक्य शयनागार में गया, वहाँ दरार से चींटी को चावल लाते हुए देख सन्देह में पड़ गया और दीवार में आग लगवा दी।

उन्दुर—यह राक्षस का चर था। राक्षस मलयकेतु की सेना से बिगड़ कर इसी के साथ चन्दनदास को छुड़ाने आया था।

पर्वतक—अफगानिस्तान या उसके आस-पास का कोई लोभी राजा था। चाणक्य ने इसकी सहायता से नन्दवंश के नाश के पश्चात् राक्षस मन्त्री को हराया था। चूँकि चाणक्य ने कुसुमपुर को जीतने के लिये आधा राज्य बाँट देने की प्रतिज्ञा की थी किन्तु जब राक्षस मन्त्री हार गया तो उसने पर्वतक को अपनी ओर फोड़ लिया। विषकन्या (जो राक्षस ने चन्द्रगुप्त के पास उसे मारने को भेजी जो) चाणक्य ने पर्वतक के पास भेज कर मरवा डाला।

वैरोधक—यह पर्वतक का भाई था। भाई के मारने के पीछे उसे ही चाणक्य ने आधा राज्य इसको देने के लिये भीतर बुलाया कि बर्बर द्वारा जो चन्द्रगुप्त के मारने को बैठा था मारा गया।

विष्णुशर्म्मा वा निपुणक—चाणक्य का सहपाठी शुक्र-नीति और चौंसठ कला से ज्योतिष मे बड़ा प्रवीण था। यह

निपुणक के नाम से चाणक्य का भेदिया था। यही राक्षस की अँगूठी लाया था और चाणक्य को दी थी।

सिद्धार्थक—चाणक्य का भेदिया था। इसको शकटदास का मित्र बना कर राक्षस के पास रक्खा था।

समिद्धार्थक—सिद्धार्थक का मित्र था। उसने अपने मित्र के साथ चाण्डाल का भेष बनाया था।

भागुरायण—यह चाणक्य का भेदिया तथा ऊपर से मलय-केतु का मित्र था। इसने अपने को छिपाते हुए समय २ पर मलयकेतु को ऐसा सुझाया कि राक्षस में और मलयकेतु में फूट पड़ जाय।

भासुरक—भागुरायण का सेवक था। यह केवल आने वालों की खबर दिया करता था।

जीवसिद्धि क्षपणक या भदन्त—जैनी फ़क़ीर बना हुआ चाणक्य का भेदिया था। यह ज्योतिषी भी था।

विजयवर्मा—यह चन्द्रगुप्त की फ़ौज में से चाणक्य के सिखाने से मलयकेतु के यहाँ चला गया था।

शारङ्गरव—चाणक्य का शिष्य।

अचलदत्त कायस्थ—चन्द्रगुप्त का मुन्शी था।

शोणोत्तरि—चन्द्रगुप्त का द्वारपाल।

विजयपाल दुर्गपाल—चन्द्रगुप्त के मुख्य सेवक।

विश्वावसु—ब्राह्मण जिसको चन्द्रगुप्त ने गहने पुन्य किये थे।

कापाल पाशिक—
दण्ड पाशिक— } सूली देने वाले चाण्डाल

हिंगुरात—यह चन्द्रगुप्त के द्वारपालों का मुखिया था यह भी चाणक्य की आज्ञा से मलयकेतु के यहाँ जा रहा था।

बलगुप्त—चन्द्रगुप्त का नातेदार भेद लेने को मलयकेतु के यहाँ जा रहा था।

राजसेन—महाराज के लड़कपन का सेवक था। यह भी चाणक्य का भेदिया बन कर मलयकेतु की सेना में जा रहा था।

भद्रभट—चाणक्य का भेदिया था जो मलयकेतु के यहाँ नौकर हो गया था।

चन्द्रभानु—यह चन्द्रगुप्त के घोड़ों का अध्यक्ष था। यह भी चाणक्य के कहने से मलयकेतु की फ़ौज में जा मिला था।

सिंहबल दत्त—चन्द्रगुप्त का सेनापति मलयकेतु के यहाँ भर्ती हो गया था।

रोहिताक्ष—यह मालवा नरेश का पुत्र था। चन्द्रगुप्त के यहाँ रहता था परन्तु चाणक्य की सलाह से मलयकेतु के यहाँ चला गया था।

मलयकेतु—पर्वतेश्वर का पुत्र था। पिता के मरने के पीछे यह भी राक्षस की सहायता पाकर चाणक्य पर चढ़ाई करने का प्रयत्न करने लगा, परन्तु चाणक्य के चरों द्वारा इसमें और राक्षस में फूट पड़ गई और राक्षस जैसे ही चन्द्रगुप्त का मन्त्री बना कि यह क़ैद कर दिया गया। किन्तु राक्षस की राय से इसका राज्य इसे वापिस कर दिया गया।

दीर्घचक्षु—मलयकेतु के द्वार का रक्षक था।

शिखरसेन—मलयकेतु का सेनापति जिसको हाथी से कुचलवाने की पर्वतेश्वर ने आज्ञा दी थी।

विष्णुगुप्त चाणक्य—यह जाति के ब्राह्मण बड़े नीतिज्ञ, वैद्यक, ज्योतिष तथा रसायन आदि के पण्डित थे। (विशेष कथानक से)

चन्द्रगुप्त—नन्द का सातवाँ पुत्र शूद्रा के पेट से पैदा। (विशेष कथानक से)

महानन्द—नन्द वंशीय मगधदेश का राजा था। (विशेष कथानक देखो)

सर्वार्थसिद्धि—यह राजा नन्द का भाई था। इसको राजा के मरने के पश्चात् राक्षस ने गद्दी पर बैठाया था पर चाणक्य के पर्वतेश्वर से मिल कर चढ़ाई करते समय जीवसिद्धि ने राज्य से चाणक्य का डर देकर जङ्गल को भगा दिया वहीं मरवा भी डाला।

वक्रनास—महानन्द से पूर्व नन्द वंश का मन्त्री।

शकटार—यह नन्द वंश का मन्त्री था तथा जाति का शूद्र था। (विशेष कथानक से)।

विचक्षणा—राजा नन्द की दासी थी (विशेष कथानक से)

राक्षस—जाति का ब्राह्मण तथा शकटार के सहायक के रूप में काम करता था। परन्तु शकटार के पीछे प्रधान मन्त्री हुआ। नन्द वंश के नाश होने पर चाणक्य तथा इनकी नीति की चोटें हुईं।

प्रियंवदक—यह राक्षस का सेवक था।

चन्दनदास—यह पटने का जौहरी राक्षस मन्त्री का हार्दिक मित्र था। तथा चाणक्य ने राक्षस का कुटुम्ब इससे मां परन्तु इसने नहीं दिया अतः इसे फाँसी की आज्ञा हुई थी।

जिष्णुदास—चन्दनदास का मित्र था।